दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

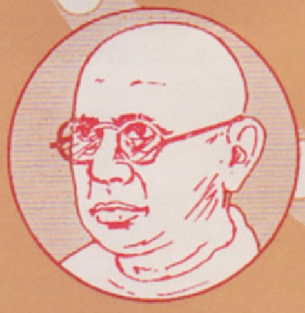

सव्वेण जिसोहइ मणुवजम्म।
सव्वेण पवित्तउ पुण्ण कम्म॥
सव्वेण सयल गुणगण महंति।
सव्वेण तियस सेवा वहंति॥

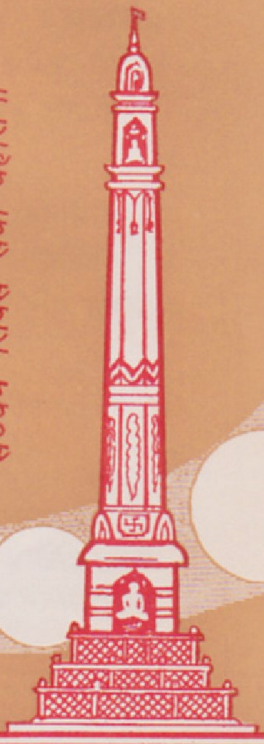

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३३ : अंक ४ [३८८] अक्टूबर, १९७७

आत्मधर्म [३८८]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक : **डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रबंध संपादक : **अखिल बंसल**

कार्यालय :

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :

आजीवन : १०१ रुपये

वार्षिक : ६ रुपये

एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :

सोहनलाल जैन, जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ अब हम अमर भये न मरेंगे

२ मंगल, उत्तम और शरण

३ संपादकीय : उत्तम सत्य

४ हंत हस्तावलंब:
[समयसार प्रवचन]

५ व्यवहार सम्यग्दर्शन
[नियमसार प्रवचन]

६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन

७ ज्ञान-गोष्ठी

८ समाचार दर्शन

१० पाठकों के पत्र

११ प्रबंध संपादक की कलम से

सत्य से मनुष्य जन्म सुशोभित होता है। सत्य से पुण्य कर्म पवित्रता को प्राप्त होते हैं। सत्य से ही संपूर्ण गुण महत्ता को प्राप्त होते हैं। सत्यधर्म धारण करनेवाले की देवता भी सेवा करते हैं।

– **महाकवि रइधू**

[मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है।]

क्षमावाणी के पावन अवसर पर, अज्ञान व प्रमादवश हुए ज्ञात व अज्ञात अपराधों के लिये आत्मधर्म परिवार क्षमाप्रार्थी है। — संपादक

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३३ [३८८] अंक : ४

अब हम अमर भये न मरेंगे ।टेक।।
तन कारन मिथ्यात दियो तज,
क्यों करि देह धरेंगे ॥अब० ॥
उपजै मरै काल तैं प्रानी,
तातैं काल हरेंगे।
राग-दोष जग बंध करत हैं,
इनको नाश करेंगे ॥अब० ॥
देह विनाशी मैं अविनाशी,
भेद-ज्ञान पकरेंगे।
नासी जासी हम चिरवासी,
चोखे हों निखरेंगे ॥अब० ॥
मरे अनंत बार बिन समझें,
अब सब दुख बिसरेंगे।
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर,
बिन सुमरें सुमरेंगे ॥अब० ॥

मंगल, उत्तम और शरण

सम्माननीय पूज्य बहिनश्री चंपाबेन द्वारा समय-समय पर अभिव्यक्त विचार-बिंदु जिज्ञासु पाठकों की सेवा में यहाँ प्रस्तुत हैं।

१. अंतर में चैतन्यतत्त्व नमस्कार करनेयोग्य है; वही मंगल है, वही सर्व पदार्थों में उत्तम है, भव्य जीवों को वह आत्मतत्त्व ही एक शरण है। बाह्य में पंच परमेष्ठी—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—नमस्कार करनेयोग्य हैं; क्योंकि उन्होंने आत्मा की साधना की है, वे मंगलरूप हैं, वे लोक में उत्तम हैं, वे भव्य जीवों को शरण हैं।

२. **अंतर में आत्मा मंगलस्वरूप है। आत्मा का आश्रय करने से मंगल पर्यायें प्रगट होंगी। आत्मा ही मंगल है, उत्तम है, और नमस्कार करने योग्य है - ऐसी यथार्थ प्रतीति करके उसका ही ध्यान करने से मंगलपना और उत्तमता प्रगट होती है।**

३. शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। वे न प्रगटें तब तक और बाद में भी देव-शास्त्र-गुरु की महिमा, स्वाध्याय आदि साधन होते हैं। जो जिसमें होता है, उसमें से वही आता है; जो जिसमें न हो, वह उसमें से कैसे आयेगा? अखंड द्रव्य के आश्रय से सब कुछ प्रगट होता है। देव-गुरु मार्ग बताते हैं परंतु कोई सम्यग्दर्शन नहीं दे देता।

४. **आत्मा ही एक सार है, बाकी सब निःसार है। सभी चिंताएँ छोड़कर एक आत्मा की ही चिंता कर। किसी भी प्रकार से चैतन्यस्वरूप आत्मा को पकड़, तभी तू संसाररूपी मगर के मुँह से छूट सकेगा।**

५. अनंत काल से जीव को स्व में एकत्व और पर से विभक्तपने की बात रुचि ही नहीं। यह जीव बाहर से भूसा कूटता रहता है; परंतु अंदर का जो कस-आत्मा है, उसे नहीं शोधता। राग-द्वेष का भूसा कूटने से क्या लाभ है? उसमें से दाना नहीं निकलेगा। पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त आत्मा को जानने से कार्य होगा।

६. **मुझे पर की चिंता का क्या प्रयोजन? मेरा आत्म सदा अकेला है ऐसा ज्ञानी जानता है। भूमिकानुसार शुभभाव भी आते हैं, परंतु अंतर में एकत्व की प्रतीतिरूप परिणति निरंतर बनी रहती है।**

७. जैसे दर्पण में प्रतिबिंब पड़ते समय भी उसमें निर्मलता रहती है—वैसे ही विभाव के समय भी तुझमें निर्मलता भरी है। तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर विभाव में तन्मय हो जाती है, उस तन्यमता को छोड़ दे।

८. **ध्रुव तत्त्व में एकाग्रता से ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, विभाव का अभाव होता है।**

९. मुनिराज को एकदम स्वरूपरमणता जागृत है। स्वरूप कैसा है? ज्ञान-आनंदादि गुणों से निर्मित है। पर्याय में समता भाव प्रगट हुआ है, शत्रु-मित्र के विकल्प रहित है, निर्मानता है, 'देह जाये पर माया होय न रोम में'—ऐसी दशा प्रगट हो गयी है। सोना हो या तृण दोनों समान हैं। चाहे जैसे संयोग हों - अनुकूलता में आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलता में खेद नहीं करते। जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे समरस-भाव बढ़ता जाता है।

१०. **द्रव्य तो निवृत्त ही है; उसका दृढ़ता से अवलंबन करके भविष्य के विभाव से भी निवृत्त हो जाओ। मुक्ति तो जिनके हाथ में आ गयी है, ऐसे मुनिराज को भेदज्ञान की तीक्ष्णता से प्रत्याख्यान होता है।**

११. जिसने चैतन्यधाम को पहचान लिया वह स्वरूप में ऐसा सो गया कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती को महल से बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता; उसीप्रकार जो चैतन्यमहल में विराज गये, उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है, आँख से रेत उठाने जैसा दुष्कर लगता है। जो जीव स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गयी है।

१२. **यदि तेरी गति विभाव में जाती है तो उसे शीघ्र ही चैतन्य में लगा। स्वभाव में आने से सुख और गुणों में वृद्धि होगी। विभाव में जाने से दुःख होगा और गुणों की हानि होगी। इसलिए शीघ्र ही स्वरूप में गति कर।**

१३. अखंड द्रव्य को ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त दशा में झूले, वह मुनिदशा है। मुनिराज

स्वरूप में निरंतर जागृत रहते हैं। मुनिराज जहाँ जागते हैं, वहाँ जगत सोता है; जगत जहाँ जागता है, वहाँ मुनिराज सोते हैं। 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करें निर्वाण की।'

१४. **'मैं शुद्ध हूँ' – ऐसा स्वीकार करने पर पर्याय की रचना शुद्ध ही होती है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।**

१५. धन्य वह निर्ग्रंथ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी। मुनिराज को अंतर में चैतन्य के अनंत गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है। अधिकांश विभाव छूट गया होता है। बाह्य में श्रामण्य-पर्याय के सहकारी कारणरूप देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंधरहित सहजदशा होती है। शिष्यों को उपदेश देने का अथवा ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है।

पंडित श्री खीमचंदभाई, सोनगढ़ एवं पंडित श्री रतनचंदजी शास्त्री, विदिशा के प्रवचनों का विशेष आयोजन

जयपुर : श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वार्षिक कार्यक्रम के अंतर्गत दिनांक २०-१०-७७ से ६-११-७७ तक पंडित खीमचंदभाई जेठालाल शेठ सोनगढ़ एवं पंडित श्री रतनचंदजी भारिल्ल, शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम.ए., विदिशा के प्रवचनों का विशेष आयोजन जयपुर में किया जा रहा है।

बाहर से पधारनेवाले बंधुओं के लिये नि:शुल्क आवास और सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। इसके लिये वे हमें तत्काल सूचित करें ताकि समुचित व्यवस्था की जा सके।

सम्पादकीय

उत्तम सत्य

एक विश्लेषण

[गतांक से आगे]

सत् अर्थात् जिसकी सत्ता है। जिस पदार्थ की जिस रूप में सत्ता है, उसे वैसा ही जानना सत्यज्ञान है, वैसा ही मानना सत्यश्रद्धान है, वैसा ही बोलना सत्यवचन है; और आत्मस्वरूप के सत्यज्ञानश्रद्धानपूर्वक वीतराग भाव की उत्पत्ति होना सत्यधर्म है।

असत् की सत्ता तो सापेक्ष है। जीव का अजीव में अभाव, अजीव का जीव में अभाव – अर्थात् जीव की अपेक्षा अजीव असत् और अजीव की अपेक्षा जीव असत् है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् और परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है।

वस्तुतः लोक में जो कुछ भी है, वह सब सत् है, असत् कुछ भी नहीं है। किंतु लोगों का कहना है कि हमें तो जगत् में असत्य का ही साम्राज्य दिखायी देता है, सत्य कहीं नजर ही नहीं आता। पर भाई! यह तेरी दृष्टि की खराबी है, वस्तुस्वरूप की नहीं। सत्य कहते ही उसे हैं जिसकी लोक में सत्ता हो।

जरा विचार करें कि सत्य क्या है और असत्य क्या है?

'यह घट है'—इसमें तीन प्रकार की सत्ता है। 'घट' नामक पदार्थ की सत्ता है। 'घट' को जाननेवाले ज्ञान की सत्ता है और 'घट' इस शब्द की भी सत्ता है। इसी प्रकार 'पट' नामक पदार्थ, उसको जाननेवाले ज्ञान एवं 'पट' शब्द की भी सत्ता जगत में है। जिनकी सत्ता है, वे सभी सत्य हैं। इन तीनों का सुमेल हो तो ज्ञान भी सत्य, वाणी भी सत्य; और वस्तु तो सत्य है ही। किंतु जब वस्तु, ज्ञान और वाणी का सुमेल न हो – मुँह से बोले तो 'पट' और इशारा करे 'घट' की ओर – तो वाणी असत्य हो जायेगी। इसीप्रकार सामने तो हो 'घट' और हम उसे जानें 'पट' तो ज्ञान असत्य (मिथ्या) हो जायेगा; वस्तु तो असत्य होने से रही। वह तो कभी असत्य हो ही नहीं सकती। वह तो सदा ही स्व-रूप से है, और पर-रूप से नहीं है।

अत: सिद्ध हुआ कि असत्य वस्तु में नहीं; उसे जाननेवाले ज्ञान में, माननेवाली श्रद्धा में या कहनेवाली वाणी में होता है। अत: मैं तो कहता हूँ कि अज्ञानियों के ज्ञान, श्रद्धान और वाणी के अतिरिक्त लोक में असत्य की सत्ता ही नहीं है; सर्वत्र सत्य का ही साम्राज्य है।

वस्तुत: जगत् पीला नहीं है, किंतु हमें पीलिया हो गया है; अत: जगत् पीला दिखायी देता है। इसीप्रकार जगत में तो असत्य की सत्ता ही नहीं है; असत्य हमारी दृष्टि में ऐसा समा गया है कि जगत में दिखायी देता है।

सुधार भी जगत का नहीं; अपनी दृष्टि का, अपने ज्ञान का करना है। सत्य का उत्पादन नहीं करना है, सत्य तो है ही; जो जैसा है, वही सत्य है। उसे सही जानना है, मानना है। सही जानना-मानना ही सत्य प्राप्त करना है। और आत्म-सत्य को प्राप्त कर राग-द्वेष का अभाव कर वीतरागतारूप परिणति होना सत्यधर्म है।

यदि मैं पट को पट कहूँ तो सत्य है, किंतु पट को घट कहूँ तो झूठ है। मेरे कहने से पट, घट तो हो नहीं जायेगा; वह तो पट ही रहेगा। वस्तु में झूठ ने कहाँ प्रवेश किया ? झूठ का प्रवेश तो वाणी में हुआ। इसीप्रकार यदि पट को घट जाने तो ज्ञान झूठा हुआ, वस्तु तो नहीं। मैंने पट को घट जाना, माना या कहा - इसमें पट का क्या अपराध है ? गलती तो मेरे ज्ञान या वाणी में हुई है। गलती सदा ज्ञान या वाणी में ही होती है, वस्तु में नहीं।

गलती जहाँ हो वहाँ मेटनी चाहिये। जहाँ हो ही नहीं, वहाँ मिटाने के व्यर्थ प्रयत्न से क्या लाभ ? दाग चेहरे पर है और दिखायी दर्पण में देता है। कोई दर्पण को साफ करे तो दाग नहीं मिटेगा; परंतु दर्पण के साफ हो जाने से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। दाग मिटाने के लिये चेहरे को धोना चाहिये।

फोटोग्राफर के पास जाकर लोग कहते हैं मेरा बढ़िया फोटो खींच दीजिये। पर भाई साहब ! फोटो तो आपकी जैसी सूरत होगी वैसा आयेगा, बढ़िया कहाँ से आ जायेगा ? आपको अपना फोटो खिंचाना है कि बढ़िया ? आपका खिंचेगा तो बढ़िया न होगा, और बढ़िया होगा तो फिर वह आपका नहीं होगा। क्योंकि यदि आपकी सूरत ही बढ़िया न हो तो फोटो बढ़िया कैसे आयेगा।

वस्तुत: तो जैसा है वैसे का नाम बढ़िया है, पर दुनियाँ कहाँ मानती हैं ? किसी के एक

आँख है और फोटो में दोनों आ जायें तो फोटो बढ़िया हो जायेगा ? बढ़िया भले कहा जाये पर वह वास्तविक न होगा। हम तो वास्तविक को ही बढ़िया कहते हैं।

वस्तु जैसी है, वैसी जानने का नाम सत्य है; अच्छी-बुरी जानने का नाम सत्य नहीं। वस्तु में अच्छे-बुरे का भेद करना राग-द्वेष का कार्य है। ज्ञान का कार्य तो वस्तु जैसी है, वैसी जानना है।

हम किसी वस्तु को कहीं सुरक्षित रखकर भूल जाते हैं और कहते हैं कि अमुक वस्तु खो गयी है। पर वस्तु खोई है या उसका ज्ञान खोया है। वस्तु तो जहाँ रखी थी वहाँ अभी भी रखी है। वस्तु को नहीं, उसके ज्ञान को खोजना है।

असत्य या तो वाणी में होता है या ज्ञान में; वस्तु में नहीं। वस्तु में असत्य की सत्ता ही नहीं है। वस्तु तो अपने ज्ञान और वाणी के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता और बनाने की आवश्यकता भी नहीं है। आवश्यकता अपने ज्ञान और वाणी को वस्तुस्वरूप के अनुरूप बनाने की है। जब ज्ञान और वाणी वस्तु के अनुरूप होंगे तब वे सत्य होंगे। जब आत्मा सत्स्वभावी-आत्मा के आश्रय से वीतराग परिणति प्राप्त करेगा तब सत्यधर्म का धनी होगा। जितने अंश में प्राप्त करेगा उतने अंश में सत्यधर्म का धनी होगा।

वाणी की सत्यता के लिये वाणी को वस्तुस्वरूप के अनुकूल ढालना होगा। सत्य बोलने के लिये सत्य जानना जरूरी है। सत्य को जाने बिना सत्य कैसे बोला जा सकता है ?

बहुत से लोग कहते हैं, इसमें क्या है ? जैसा देखा, जाना, सुना- वैसा ही कह दिया सो सत्य है। इसी आधार पर वे कहते हैं कि सत्य बोलना सरल है और झूठ बोलना कठिन। क्योंकि उनके अनुसार सत्य बोलने में क्या है—जैसा देखा, जाना, सुना वैसा ही कह दिया; पर झूठ बोलने के लिये योजना बनानी पड़ती है, घर में सब लोगों को ट्रेंड करना पड़ता है कि कहीं झूठ खुल न जाये। एक झूठ के पीछे हजार झूठ बोलने पड़ते हैं, फिर भी उसके खुल जाने की शंका बनी ही रहती है।

जैसे—किसी ने दरवाजा खटखटाया या फोन की घंटी बजी। दरवाजा खोलते ही या फोन का रिसीवर उठाते ही सामनेवाले ने पूछा—अमुक व्यक्ति है ? यदि सत्य कहना है तो तत्काल कह दिया 'है' अथवा 'नहीं'। पर यदि झूठ कहना है तो 'देखता हूँ, आप कौन हैं ?

क्या काम है ?' आदि लम्बी प्रश्नसूची उसके सामने खड़ी करनी होगी और अंदर पूछकर उत्तर दिया जायेगा। यदि बालक या चपरासी झूठ बोलने में कुशल न हुआ तो यह भी कह सकता है कि पिताजी कहते हैं या साहब कहते हैं कि कह दो घर पर नहीं हैं। यदि उसने ठीक-ठीक कह भी दिया कि 'नहीं हैं', फिर भी किसी दूसरे के द्वारा कभी पर्दाफाश भी हो सकता है। अत: उनके अनुसार सत्य बोलना आसान है और झूठ बोलना कठिन।

पर मेरा कहना है कि सारी कवायद झूठ बोलने के लिये नहीं; झूठ छिपाने के लिये करनी पड़ती है, झूठ को सत्य का लबादा पहनाने के लिये करनी पड़ती है। झूठ बोलने में क्या है? बिना सोचे-समझे चाहे जो बोलते जाइये, वह गारंठी से झूठ तो होगा ही। कोई पूछे—दिल्ली में कितने कौए हैं? सत्य बोलनेवाले को सोचना पड़ेगा। हो सकता है कि वह उत्तर दे ही न पाये या यह कहना पड़ेगा कि मुझे नहीं मालूम, पर झूठ बोलनेवाले को क्या? कुछ भी संख्या बता दे। बिना गिने जो भी संख्या बतायेगा वह झूठ तो गारंटी से होगी ही।

मैं ही आप लोगों से पूछता हूँ कि आजकल सूर्य कितने बजे उगता है? बताइये, आप चुप क्यों हो गये? इसलिये कि आप झूठ बोलना नहीं चाहते और सत्य का पता नहीं है। झूठ ही बोलना है तो कुछ भी कह दीजियेगा। किंतु सत्य बोलने के लिये बहुत बड़ी जिम्मेदार होती है, अत: बिना सोचे-समझे सत्य नहीं बोला जा सकता। सत्य बोलने के पहले सत्य जानना बहुत जरूरी है।

यह बात प्रयोजनभूत तत्त्वों के संबंध में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। लौकिक वस्तुओं के बारे में बोला गया झूठ भी यद्यपि पापबंध का कारण है; तथापि प्रयोजनभूत तत्त्वों के विषय में बोला गया झूठ तो महान पाप है, अनंत संसार का कारण है, अपना और पर का बड़ा भारी अहित करनेवाला है।

अत: यदि वस्तुतत्त्व की सही जानकारी नहीं है तो अनापशनाप बोलने से नहीं बोलना-चुपा रहना हितकर है।

मुक्ति के मार्ग में सत्य बोलना अनिवार्य नहीं; किंतु सत्य जानना, सत्य मानना और आत्म-सत्य के आश्रित वीतरागपरिणतिरूप सत्यधर्म प्राप्त करना जरूरी है। क्योंकि बिना बोले मोक्ष हो सकता है; पर बिना जाने, माने और तद्रूप परिणमित हुए बिना नहीं। सत्य जानने पर

जीवन भर भी न बोले तो कोई अंतर न पड़ेगा, पर जाने बिना नहीं चलेगा।

अग्नि को कोई गर्म न कहे तब भी वह गर्म रहेगी। उसे गर्म रहने के लिये यह आवश्यक नहीं कि उसे कोई गर्म कहे ही। इसी प्रकार उसे कोई गर्म न जाने तब भी वह गर्म रहेगी। उसीप्रकार वस्तु का सत्यस्वरूप भी वाणी की अपेक्षा नहीं रखता और न वह ज्ञान की ही अपेक्षा रखता है। वह तो सदा सत्य ही है। उसे उसीरूप में जाननेवाला ज्ञान सत्य है, माननेवाली श्रद्धा सत्य है, कहनेवाली वाणी सत्य है, और तद्नुकूल आचरण करनेवाला आचरण भी सत्य है। हम मूलसत्य को ही भूल गये हैं, तो उसके आश्रय से होनेवाले ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र एवं वाणी के सत्य हमारे जीवन में कैसे प्रगट हों?

अंतर में विद्यमान ज्ञानानंदस्वभावी त्रैकालिक ध्रुव आत्मतत्त्व ही परम सत्य है। उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ ज्ञान, श्रद्धान एवं वीतराग परिणति ही उत्तमसत्य धर्म है।

आज का युग समझौतावादी युग है। अति उत्साह में कुछ लोग वस्तुतत्त्व के संबंध में भी समझौते की बात करते हैं। किंतु वस्तु के सत्यस्वरूप को समझने की आवश्यकता है, समझौते की नहीं। वस्तु के स्वरूप में समझौते की गुंजाइश भी कहाँ है और उसके संबंध में समझौता करनेवाले हम होते भी कौन हैं? समझौते में दोनों पक्षों को झुकना पड़ता है। समझौते का आधार सत्य नहीं, शक्ति होती है। समझौते में सत्यवादी की बात नहीं, शक्तिशाली की बात मानी जाती है।

अग्नि कैसी है – ठंडी या गर्म? यह बात जानने की तो हो सकती है, पर इसमें समझौते की क्या बात है? यदि कोई कहे कि अग्नि ठंडी है और कोई कहे गर्म है, इसमें क्या समझौता हो सकता है? पचास प्रतिशत ठंडी और पचास प्रतिशत गर्म मानी जाये क्या? यदि न मानें तो समझौता नहीं होगा, मान लें तो सत्य नहीं रहता।

वस्तु के सत्य स्वरूप को आपका समझौता स्वीकार भी कहाँ है? यदि आपने सर्व सम्मति से भी अग्नि को ठंडी मान लिया तो क्या अग्नि ठंडी हो जायेगी? नहीं, कदापि नहीं। अग्नि तो जैसी है, वैसी ही रहेगी।

अग्नि कैसी है? इसके बारे में पंचायत बैठाने के बजाय छूकर देखना सही रास्ता है। उसीप्रकार सत्य वस्तुतत्त्व के बारे में पंचायतें बैठाने के बजाय आत्मानुभव करना सही मार्ग है।

वस्तु के स्वरूप की सत्य समझ का नाम धर्म है। सत्य को समझौते की नहीं, समझने की आवश्यकता है, सत्य और शांति समझ से मिलती है, समझौते से नहीं।

इस चमत्कारप्रिय जगत में सत्य की आवश्यकता भी किसे है? उसे प्राप्त करने की एकमात्र तमन्ना किसे है, तड़प किसे है? उसकी कीमत भी कौन करता है? यहाँ तो चमत्कार को नमस्कार है।

एक साधारण-सा जादूगर चौराहे पर खड़ा होकर लोगों को झूठा आम बताकर सैकड़ों रुपये बटोर लेता है, जबकि एक कृषक को सच्चे आम के पचास पैसे प्राप्त करना कठिन होता है। वास्तविक आम खरीदते समय लोग हजार मीन-मेख निकालते हैं।

जादूगर तो मात्र आम दिखाता है, देता नहीं; पर कृषक देता भी है। जादूगर के पास आम है भी नहीं, वह दे भी कहाँ से? वह तो धोखा देता है, हाथ की सफाई बताता है, हमारी नजर बंद करता है। पर इस जगत में धोखा देनेवाला आदर पाता है, धन पाता है। हमें उसकी महिमा आती है, जो हमारी नजर बंद करता है; उसकी नहीं जो खोलता है। लोग कहते हैं क्या गजब किया, आम था ही नहीं और दिखा दिया; है न कमाल! पर मैं यह कहता हूँ—कमाल है या धोखा। ज्ञानी तो उसे कहते हैं—जो है उसे दिखाये; जो नहीं है उसे बतानेवाला तो धोखेबाज ही हो सकता है। पर लोग सत्य के प्रति उत्साहित नहीं होते, महिमावंत नहीं होते; धोखे से प्रभावित होते हैं। कहते हैं सत्य में क्या है? वह तो है ही, उसे दिखाने में क्या रखा है? कमाल तो—जो नहीं है, उसे दिखा देने में है।

असत्य के प्रति बहुमान वालों को सत्य प्राप्त होना कठिन ही नहीं, असंभव है। सत्य—सत्य की रुचि, महिमा, लगन वालों को ही प्राप्त होता है।

आत्म-सत्य की तीव्र रुचि जागृत हो, उसकी महिमा आवे, उसे प्राप्त करने की तीव्रतम लगन लगे, उसे प्राप्त करने का अंतरोन्मुखी पुरुषार्थ जगे और सत्य की प्राप्ति न हो; यह संभव नहीं है। सत्य के खोजी को सत्य प्राप्त होता ही है।

आत्मवस्तु के त्रैकालिक सत्यस्वरूप के आश्रय से उत्पन्न होनेवाला वीतराग परिणतिरूप उत्तमसत्य धर्म जन-जन में प्रगट हो, ऐसी पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ।

*

हंत हस्तावलंबः

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत आत्मख्याति टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा ११-१२ की टीका में समागत कलश नं० ५ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित्॥५॥

जो व्यवहारनय है, वह यद्यपि इस पहली पदवी में जिन्होंने अपना पैर रखा है, ऐसे पुरुषों को अरे रे! हस्तावलंबन तुल्य कहा है; तथापि जो पुरुष चैतन्यचमत्कारमात्र, परद्रव्य-भावों से रहित, परम 'अर्थ' को अंतरंग में अवलोकन करते हैं, उसकी श्रद्धा करते हैं, तथा उसरूप लीन होकर चारित्र भाव को प्राप्त होते हैं; उन्हें यह व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है।

यथार्थ वस्तु का निश्चय करके ज्ञान में थिर न हो तब तक व्यवहारनय हस्तावलंबन तुल्य कहा है, सचमुच में उसका अवलंबन नहीं है। छत पर जाते समय रेलिंग (बाजू में लगी लकड़ी) पर हाथ जाता है और सीढ़ी पर पैर रखते हैं, परंतु वह छोड़ने के लिये है। उसीप्रकार यथार्थस्वरूप का निर्णय करने के लिये शुभविकल्प में रुकना पड़ता है, निमित्ताश्रित भेद में अटकना पड़ता है, परंतु अरे रे! खेद है। परमार्थ में जाते समय बीच में तत्त्व के विकल्पों का आँगन अवश्य आता है, पर उससे आगे नहीं बढ़ते। अपने पुरुषार्थ से स्वयं विकल्पों का उल्लंघन कर उनका अभाव करे तब विकल्पों के अभाव को निमित्त कहा जाता है।

अनादि से पराश्रयरूप व्यवहार की पकड़ से शरीर, राग-द्वेष, पुण्य-पाप आदि का स्वामित्व और कर्तृत्व मानता था; वहाँ से पलटकर अखंड अविकारी निरालंबी स्वभाव का अवलंबन करने पर विकल्प का अंश टूटकर प्रथम तीन गुणस्थानों का उल्लंघन कर सीधा सम्यग्दर्शनरूप चतुर्थ गुणस्थान में जाता है।

विकार का नाशक स्वभाव नित्य एक ज्ञायकरूप है। विकार में अटके ऐसा उसका स्वरूप नहीं। आचार्यदेव कहते हैं कि जीव को परमार्थ में ही जाना है तो भी नवतत्त्व तथा गुण-गुणी के भेदरूप विचार और शुभ विकल्परूप व्यवहार आये बिना नहीं रहता, तो भी वह कुछ प्रयोजनभूत नहीं है। जैसे माल खरीदते समय माल का प्रकार, मूल्य, वजन आदि का निर्णय करके खरीदते हैं; पर उसका स्वाद लेते समय तराजू, बाट, मूल्य आदि कुछ भी साथ नहीं रखना पड़ता; उसीप्रकार परमार्थस्वरूप आत्मा का निर्णय करने के लिये जीवादि नव तत्त्वों का स्वरूप जानना, तथा शुद्ध जीवतत्त्व का विचार गुरुगम से बराबर करना पड़ता है; परंतु उसके एकरूप अनुभव-स्वाद के लिये नव तत्त्व संबंधी सभी विचार छोड़ने पड़ते हैं, क्योंकि शुभ विकल्पों से आत्मानुभव प्रगट नहीं होता।

प्रथम नव तत्त्व का यथार्थ ज्ञान किये बिना आत्मा का पूर्ण स्वभाव ज्ञात नहीं होता। नव तत्त्व का यथार्थ ज्ञान सम्यग्दर्शन के लिये हस्तावलंबन है। परंतु हस्तावलंबन से सम्यग्दर्शन नहीं होता, वह तो पुरुषार्थ से होता है; ऐसा न समझे तो सम्यग्दर्शनरूप धर्म के समीप भी नहीं।

सुख की शुरुआत के लिये पहले सच्चा ज्ञान करना पड़ेगा। निराकुल स्वाधीन सुखस्वरूप आत्मा को जानने के लिये प्रथम नव तत्त्व का यथार्थ भेद जानना चाहिये। गुरुगम से नव तत्त्व को यथार्थ जानने पर परमार्थस्वरूप की निकटता होती है। वह विकल्प भी रागांश है। वह जीव स्वरूप के आँगन में खड़ा है, पर घर में स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हुआ; स्वभाव की ऋद्धि जुदी ही है। पहले से ही सभी विकल्पों को छोड़ने योग्य जानकर नव तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान हो तो निर्विकल्प अनुभवसहित अखंड तत्त्व की श्रद्धा, स्व-पर की भिन्नता करनेवाला यथार्थ ज्ञान और अंतररमणतारूप चारित्र नहीं होता।

आचार्यभगवान ने परम अद्‌भुत रहस्य की घोषणा की है। इस अपूर्व वस्तु का जिसे ख्याल भी नहीं वह उसका विचार कैसे करेगा? लगनपूर्वक तत्त्व अभ्यास न करे तो ठहरने का ठिकाना भी कहीं नहीं है। निर्विकल्प पूर्ण परमार्थ स्वभाव प्रगट करने के लिये, उसका विशेष ज्ञान करने के लिये, नव तत्त्वों के विचार में रुकना पड़ता है; आचार्यदेव को उसका भी खेद है। जो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप विपरीत मानते हैं, पुण्य से धर्म मानते हैं; ऐसे अज्ञानियों को तो नव तत्त्व की व्यवहार से भी खबर नहीं है, उनकी तो यहाँ बात ही नहीं है।

प्रथम व्यवहार-श्रद्धा में ही भूल होने पर परमार्थ के आँगन के समीप कैसे आ सकेगा ? शुभ आस्रवभाव, नव तत्त्व के भेद-विकल्प भी परमार्थ से छोड़ने योग्य हैं। नव तत्त्व की श्रद्धा परमार्थ नहीं है; फिर भी बीच में हस्तावलंबन तुल्य आ जाती है, अत: उसमें रुकने का भी खेद नहीं है। यदि शुभ विकल्परूप भेद बिना सीधे ही परमार्थ में जा सकते तो व्यवहार में रुकने की आवश्यकता नहीं थी। परंतु ऐसा होता नहीं।

सम्यग्दर्शन होने के बाद भी चौथी-पाँचवीं और छठी भूमिका में राग और भेद आता है, अत: उसे हस्तावलंबन तुल्य कहा है। ज्ञानी को राग आने का खेद वर्तता है और अज्ञानी उसमें उत्साहित होता है। धर्मी जीव अपने स्वभाव के आश्रय से आगे बढ़ता है, तब व्यवहार को निमित्त कहते हैं, हस्तावलंब कहते हैं। तो भी जो पुरुष दृष्टिपूर्वक अंतर्लीन होते हैं, उन्हें व्यवहारनय बिल्कुल प्रयोजनवान नहीं है। परमार्थ में लीन होनेवालों को नय ही नहीं होता, विकल्प ही नहीं होते; अत: व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है।

नियमसार प्रवचन

व्यवहार सम्यग्दर्शन

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की पाँचवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :—

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो॥५॥

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है। जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं ऐसा जो सकल गुणमय पुरुष वह आप्त है।

अब पाँचवीं गाथा में व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं। व्यवहार सम्यग्दर्शन भी जिसे नहीं उसे तो परमार्थ सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को जो पहचानता

नहीं और सभी देव-गुरु-शास्त्र सच्चे हैं, ऐसा जो मानता है, उस जीव को तो व्यवहार सम्यक्त्व भी नहीं—वह तो वैनयिक मिथ्यादृष्टि है। इसलिये यहाँ व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप कहा जाता है।

सच्चा देव कैसा होता है, उसके कहे हुए शास्त्र कैसे होते हैं और उनमें कहे हुए तत्त्व कैसे होते हैं, इसका जिसे श्रद्धान है और इसके अतिरिक्त जो अन्य किसी को मानता नहीं उस जीव को व्यवहार सम्यक्त्व है। परमार्थ सम्यक्त्व तो अंदर के चैतन्य स्वभाव की श्रद्धा में है। व्यवहार सम्यक्त्व तो बारदाने जैसा है; माल खरीदने जाये वहाँ माल रखने के लिये बारदाना होता है अवश्य, किंतु फिर भी बारदाना भिन्न है और माल भिन्न है। उसीप्रकार व्यवहार सम्यक्त्व में देव-गुरु-शास्त्र की और नव तत्त्व की श्रद्धा होती है, वह तो शुभराग है तथा परमार्थ स्वभाव की श्रद्धा जो रागरहित है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है।

यह व्यवहार सम्यक्त्व के स्वरूप का कथन है। जहाँ आत्मा के स्वभाव की श्रद्धारूप निश्चय सम्यक्त्व हो और वीतरागता हुई हो वहाँ ऐसा व्यवहार सम्यक्त्व है; व्यवहार सम्यक्त्व अर्थात् आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा। उसमें अरहन्त भगवान आप्त हैं, उनके समस्त दोषों का नाश हो गया है। उनके अभी योग का कम्पन इत्यादि होने पर भी उन्हें सकल दोषरहित कहा गया है। घातियाकर्मों के निमित्त से होनेवाले समस्त दोष नष्ट होकर केवलज्ञानादि प्रकट हो गये हैं, इस अपेक्षा से उन्हें 'सकल दोषविमुक्त' एवं 'सकल गुणमय' कहा है। ऐसे आप्त अरहंतदेव की श्रद्धा वह व्यवहार सम्यक्त्व है। सर्वज्ञ परमात्मा 'सकल गुणसहित' और 'सकल दोषरहित' हैं अर्थात् गुण की अस्ति और दोष की नास्ति से यह कथन किया।

आप्त अर्थात् शंकारहित; यहाँ शंका में अठारह दोषों का समावेश कर दिया है। यहाँ शंका अर्थात् मात्र दर्शनमोह नहीं, अपितु रागादि सभी भावों को शंका में गर्भित किया है। क्योंकि जहाँ रागादि भाव हैं, वहाँ स्थिरता नहीं है, स्थिरता के अभाव को यहाँ शंका कहा है। ऐसी शंका का जिसके अत्यंताभाव है अर्थात् मोह-राग-द्वेषादि दोषों से जो रहित है, वही आप्त है।

अपनी शुद्ध चैतन्य की प्रतीति में तो राग या विकल्प है नहीं, किंतु निचली दशा में शुभराग और विकल्प होने पर आप्त, आगम और तत्त्वों की व्यवहार श्रद्धा होती है। उस श्रद्धा में आप्त, आगम और तत्त्व ऐसे ही होते हैं, इससे विपरीत को माने तो व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है।

आप्त ऐसे अरहंत देव के मुख-कमल से निकली हुई समस्त वस्तु-विस्तार के स्थापन करने में समर्थ ऐसी चतुर वचन-रचना ही आगम है। देखो, यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध का कथन है। वास्तव में आप्त तो आत्मा है, आत्मा के मुख नहीं होता, क्योंकि मुख तो औदारिक शरीर है, उसमें से भाषावर्गणा नहीं निकलती। परंतु निमित्तरूप से पहचानने के लिये कहा कि भगवान की वाणी आगम है। सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में चतुर वचन-रचना है और वह समस्त वस्तु के विस्तार का स्थापन करने में समर्थ है।

श्रीमद् रायचंद्रजी ने कहा—'जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञान मां—कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो' यह बात यहाँ लागू नहीं पड़ती। यहाँ तो कहते हैं कि समस्त पदार्थों को समझाने में निमित्त होने की सामर्थ्य सर्वज्ञ की वाणी में है। सर्वज्ञ का ज्ञान परिपूर्ण जानता है और वाणी परिपूर्ण कथन करती है। उस वाणी को आगम कहते हैं, उसकी श्रद्धा व्यवहार सम्यक्त्व है।

भगवान की वाणी में कितने तत्त्व कहे? बहिस्तत्त्व और अंतस्तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व—इस भाँति दो प्रकार के तत्त्व हैं। अंतस्तत्त्व तो निज कारण परमात्मा चिदानंद भगवान है और पुण्य-पाप इत्यादि सब बहिस्तत्त्व हैं। इसप्रकार दो भेद करके तत्त्व की श्रद्धा करना वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न - अंतस्तत्त्व में तो कारण परमात्मा की प्रतीति भी आ गई तो भी उसे व्यवहार क्यों कहते हो?

उत्तर - यहाँ दो भेद के लक्ष्य से प्रतीति करने को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है। अंतस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व ऐसे दो भेद के लक्ष्य से प्रतीति हुई वह व्यवहार सम्यक्त्व है। किंतु इसे व्यवहार कब कहा जाता है? उस व्यवहार का निषेध करके अभेद स्वभाव की श्रद्धा की जाये, तब भेद की श्रद्धा को व्यवहार श्रद्धा कहा जाता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में नव तत्त्व की श्रद्धा को निश्चय सम्यक्त्व कहा है और यहाँ उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहा है। अन्तस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व ऐसे दो भेदवाली श्रद्धा को भी व्यवहार सम्यक्त्व कहा है। यहाँ तो अभेद दृष्टि की प्रधानता से कथन है और वहाँ ज्ञान की प्रधानता से कथन है। ज्ञान में विकल्प टूटकर संपूर्ण जानने में आ गया है, इस अपेक्षा से नव तत्त्व की श्रद्धा को भी निश्चय सम्यक्त्व कहा है; परंतु वहाँ भी ऐसे अभेद स्वभाव की

श्रद्धापूर्वक के नव तत्त्व के ज्ञान की बात है। अभेद की श्रद्धा के बिना अकेले भेद के ज्ञान को सम्यक्त्व नहीं कहा है।

यहाँ कहते हैं कि अकेले अंतस्तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व की दृष्टि वह परमार्थ श्रद्धा है, और 'यह अंतस्तत्त्व और यह बहिस्तत्त्व' ऐसे दो भेद के लक्ष्यवाली श्रद्धा वह व्यवहार श्रद्धा है, क्योंकि उसमें राग है। उस राग से लाभ न माने और अंतरस्वभाव की रागरहित श्रद्धा से ही लाभ माने तो उस रागवाली श्रद्धा को व्यवहार श्रद्धा कहा जाता है। यदि राग से लाभ माने तो उसको व्यवहार श्रद्धा भी नहीं कहते।

अनंतकेवली और सिद्ध इस आत्मा से पर होने से वे सब बहिस्तत्त्व हैं और अपने में मोक्षपर्याय का भेद करना वह भी बहिस्तत्त्व है। अकेला निरपेक्ष कारण परमात्मतत्त्व ही अंतस्तत्त्व है। इसके अलावा भेद या विकल्प उठे वह समस्त बहिस्तत्त्व हैं। सर्वज्ञ ने ऐसे दो प्रकार के तत्त्व कहे हैं।

जिसके लक्ष्य से विकल्प और राग हो वह सब बहिस्तत्त्व में जाता है। पर्याय का भेद करना भी बहिस्तत्त्व है, लेकिन पर्याय में से पर्याय नहीं आती, पर्याय के लक्ष्य से राग होता है। केवली भगवान भी बहिस्तत्त्व हैं, उनसे लाभ माने तो मिथ्यात्व है। और यदि उन सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी अन्य बात को माने तब तो व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है। ऐसे सर्वज्ञ कथित तत्त्वों के अतिरिक्त दूसरे तत्त्वों को माने तो उसको ऐसे आगम और तत्त्वों की श्रद्धा नहीं है।

सिद्ध दशा है तो निर्मल, परंतु वह भी पूर्ण तत्त्व नहीं है, वह एकसमयवर्ती दशा है। त्रिकाल परमात्मस्वभाव ही अंतस्तत्त्व है। उस अकेले अंतस्तत्त्व की प्रतीति तो निश्चय सम्यक्त्व है किंतु 'यह परमात्मतत्त्व और यह बहिस्तत्त्व' ऐसे भेद के विकल्प द्वारा निश्चय किया उसका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है। निश्चय सम्यक्त्व में भेद नहीं आता, उसमें तो अकेला अभेद कारण स्वभाव भाव ही है; जबकि व्यवहार सम्यक्त्व में भेद पड़ता है।

अंतर में अभेद की श्रद्धा है इसलिये भेद की श्रद्धा है, ऐसा नहीं; और भेद की व्यवहार श्रद्धा है इसलिये अभेद की श्रद्धा है, ऐसा भी नहीं। अभेद की परमार्थ श्रद्धा होने पर भी अभी राग है इसलिये उस राग के कारण भेदवाली श्रद्धा है।

प्रथम ही तत्त्व के अंतस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व ऐसे दो भेद किये; अब विशेष रूप से

उसके सात प्रकार कहते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ऐसे सात तत्त्व हैं; उनकी श्रद्धा व्यवहार है।

'मैं जीव हूँ', परिपूर्णस्वभावी हूँ, ऐसी विकल्पवाली प्रतीति वह जीव तत्त्व की व्यवहार श्रद्धा है। दूसरे सभी जीव इस जीव से भिन्न हैं। छहों तत्त्वों को भिन्न रखते हुए जीव तत्त्व को भिन्न जाने, तो जीव तत्त्व को माना कहा जाये। यदि जीव तत्त्व को पुण्य-पापवाला माने तो जीव तत्त्व भिन्न नहीं रहता। और यदि कर्मवाला माने तो जीव तथा अजीव तत्त्व भिन्न नहीं रहते अर्थात् ऐसे जीव को तो सात तत्त्वों की व्यवहार श्रद्धा भी नहीं हुई। जीव मूर्त भी है और अमूर्त भी है - ऐसा माने तो उसे जीव तत्त्व की श्रद्धा नहीं है।

'मैं शुद्ध चिदानंद आत्मा हूँ'—'परमाणु से भिन्न परमात्मा हूँ'—ऐसे स्वभाव की राग रहित श्रद्धा वह निश्चय सम्यक्त्व है, वही धर्म है, और ऐसी श्रद्धा के साथ शुभराग के समय व्यवहार श्रद्धा होती है। फिर भी निश्चय के कारण वह व्यवहार नहीं है और उस व्यवहार के कारण निश्चय नहीं है। निश्चय रह जाता है और व्यवहार का विकल्प टूट जाता है।

सिद्ध परमात्मा के समान ही मेरा आत्मा है, ऐसे आत्मा की सविकल्प श्रद्धा व्यवहार श्रद्धा है। प्रथम व्यवहार और पश्चात् निश्चय—ऐसे पहले-पीछे नहीं है। कदाचित् पहले व्यवहार श्रद्धा करने को कहा हो, किंतु वास्तव में अखंड स्वभाव की प्रतीति करके निश्चय श्रद्धा करे तो ही राग को व्यवहार श्रद्धा कहा जाता है। निश्चय श्रद्धा करे तो पूर्व की रागवाली श्रद्धा पर व्यवहार का उपचार आता है।

कभी-कभी ऐसा भी कहा जाता है कि 'प्रथम व्यवहार होता है', किंतु वहाँ वह व्यवहार निश्चय का कारण है, ऐसा उस कथन का आशय नहीं है। इसी नियमसार के पृष्ठ १०९ में कहेंगे कि 'जो परम जिन योगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उनको वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है'; निर्विकल्प वीतराग दशा न हो वहाँ तक पहले ऐसा शुभराग होता है, उसका ज्ञान कराने के लिये यह बात है। मुनि के छठे गुणस्थान में कैसी दशा होती है, यह बताया है। प्रथम व्यवहार कहा, उसका अर्थ यह नहीं है कि पहले व्यवहार प्रकट हो और बाद में निश्चय प्रकट हो; सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प दशा में स्थिर न रहे सके तब छठे गुणस्थान की विकल्प दशा में पहले ऐसे शुभभाव

होते हैं—ऐसा वहाँ बताया है। किंतु वह व्यवहार करते-करते निश्चय प्रकट होगा, राग करते-करते वीतरागता होगी; ऐसा कथन करने का अभिप्राय नहीं है।

पर को जानना कोई दोष नहीं है, किंतु पर की तरफ झुकाव करके राग की वृत्ति हो वह दोष है। ज्ञान होना कोई दोष नहीं है, ज्ञान का स्वभाव तो संपूर्ण जानने का है। मेरी पर्याय में संवर-निर्जरा होते हैं, वे तो अंश हैं, मात्र उतना ही मैं नहीं हूँ, तथा संवर-निर्जरा के भेद की तरफ लक्ष्य जाता है, वह मैं नहीं हूँ। 'अंतर में अखंड परमात्मतत्त्व हूँ' ऐसी जो विकल्प की वृत्ति उठती है, उसे यहाँ व्यवहार श्रद्धा कहा है। विकल्पवाली श्रद्धा में भी 'मैं शुद्ध जीव हूँ, पुण्य-पाप रहित हूँ' ऐसी रागसहित श्रद्धा है। यदि व्यवहार श्रद्धा में रागरहित शुद्धजीव का समावेश न करें तो सात तत्त्व भिन्न सिद्ध नहीं होते और यदि उसमें विकल्प टूट जाये तो वह श्रद्धा व्यवहार श्रद्धा ही न रहे, अपितु निश्चय श्रद्धा हो जाये। निष्कर्ष यह निकला कि विकल्परहित जो शुद्धजीवतत्त्व का निर्णय किया, वह व्यवहार सम्यक्त्व है और यदि ऐसी श्रद्धा करे कि व्यवहार से—राग से लाभ होगा तो उसके तो व्यवहार और निश्चय में भेद ही नहीं रहा।

संक्षेप में कहो तो दो तत्त्व हैं। अंतस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व। यदि विस्तार से कहो तो सात तत्त्व हैं; जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। उसमें जो अंतस्तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व कहा वह तो शुद्धजीवतत्त्व है और शेष छहों तत्त्व बहिस्तत्त्व हैं। इन सब की रागवाली श्रद्धा वह व्यवहार श्रद्धा है।

(१) मैं जीव तत्त्व हूँ। यह जीव तत्त्व अजीव तत्त्व से तथा पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध तत्त्व से रहित है और संवर, निर्जरा एवं मोक्ष के अंश जितना भी नहीं है; क्योंकि ये तो एक समय के अंश हैं और जीव तत्त्व तो त्रिकाल है। ऐसे त्रिकाली जीव तत्त्व का विकल्प से निर्णय करना, वह तो अभी व्यवहार सम्यक्त्व है।

(२) शरीर अजीव है, उसकी गति जीव से नहीं होती। मेरे कारण से शरीर की गति होती है, ऐसा जो मानता है, उसे जीव-अजीव तत्त्व की श्रद्धा नहीं है। शरीरादि तो अजीव की पर्यायें हैं, और मैं जीव हूँ, अजीव से जीव भिन्न है; इसके बदले ऐसा माने कि जीव से अजीव की क्रिया होती है अथवा अजीव की क्रिया से जीव को धर्म होता है, तो उसे जीव-अजीव की

व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है। व्यवहार श्रद्धा में सातों तत्त्व जैसे हैं वैसे ही पहचानना चाहिये। उसमें विकल्प है इसलिये उसे व्यवहार कहा है।

'सात तत्त्व' कहते ही जीव और आस्रव भिन्न-भिन्न हैं ऐसा आ जाता है। सात तत्त्व के ज्ञान को विकल्पसहित कहना, वह व्यवहार श्रद्धा है और राग टूटकर निर्विकल्प श्रद्धापूर्वक जो स्वभाव के आश्रयवाला ज्ञान है—रागरहित ज्ञान है, वह निश्चय है। रोटी अजीव है, और मैंने रोटी बनायी—ऐसा जो मानता है उसे तो अजीव तत्त्व की भी श्रद्धा नहीं और न ही जीव तत्त्व की श्रद्धा है। रागवाली व्यवहार श्रद्धा का निषेध करके अंतरस्वभाव की श्रद्धा में जाये तो उसको व्यवहार का आंगन कहा जाये। वास्तव में अंतरस्वभाव की रागरहित प्रतीति वही धर्म की प्रथम इकाई है। सर्वज्ञ सर्वव्यापक एक जीव ही है और अजीवादि कहीं हैं ही नहीं, ऐसा जो माने उसने तो व्यवहार से भी सात तत्त्वों को नहीं माना अर्थात् उसको व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है।

(३) आस्रव - पुण्य-पाप दोनों का समावेश आस्रव में हो जाता है। आस्रव है, वह जीव नहीं, संवर-निर्जरा भी नहीं। इसप्रकार भिन्न-भिन्न तत्त्वों को माने तो व्यवहार श्रद्धा है, किंतु पुण्य करते-करते धर्म होगा—ऐसा माने तो उसने सात तत्त्वों को माना नहीं।

(४) संवर - निश्चय से संवर तो स्वभाव के आश्रय से है। रागरहित-पुण्यरहित निर्मल पर्याय वह संवर है, उसको पहचाने तब व्यवहार श्रद्धा है। संवर प्रकट कब हो? स्वभाव का आश्रय करे तब। परंतु ऐसा संवर प्रकट होने से पहले उसकी रागसहित प्रतीति करना, वह व्यवहार श्रद्धा है।

(५) निर्जरा - निर्जरा आत्मा की निर्मल पर्याय है। वह निर्जरा अजीव के कारण नहीं होती, पुण्य के कारण नहीं होती। रोटी नहीं खाई इसलिये निर्जरा हुई—ऐसा माने, अथवा शुभराग हुआ उससे निर्जरा हुई—ऐसा माने, तो उसे निश्चय या व्यवहार एक की भी श्रद्धा सच्ची नहीं है। निर्जरा का अर्थ है—विशेष रूप से अशुद्धता का झड़ जाना अथवा शुद्धता की वृद्धि होना—और वह एक समयवर्ती भाव है, उसमें शुद्धता की वृद्धि वह उत्पाद है और अशुद्धता का झड़ना वह व्यय है।

(६) बंध तत्त्व - बंध का कारण त्रिकाल शुद्ध जीवतत्त्व नहीं है, और न अजीव ही

बंध का कारण है। बंध तो एकसमय का विकारी भाव है। स्वभाव का विकास न होने पर अशुद्धता में अटक जाना उसका नाम बंध है।

(७) मोक्ष तत्त्व – जिसको पुनः अवतार नहीं, और आत्मा की पूर्ण शुद्धता प्रकट हो गई है उसका नाम मोक्षतत्त्व है। मोक्ष प्राप्त परमात्मा को पुनः अवतार नहीं होता। साधक दशा में भी शुद्धस्वभाव की दृष्टि होने के कारण उस दृष्टि में अशुद्धता का स्वीकार नहीं होता, और शुद्धता में स्थिर हुआ, वह फिर से अस्थिरता में नहीं आता; तो फिर पूर्ण परमात्मदशा प्रकट होने के बाद पुनः अशुद्धता हो या अवतार धारण करे ऐसा नहीं हो सकता। मोक्षतत्त्व में अजीव नहीं; आस्रव, बंध या संवर, निर्जरा भी नहीं; उसी भाँति मोक्षतत्त्व में संपूर्ण जीव तत्त्व भी नहीं आ जाता। मोक्ष तत्त्व तो एक समय की पर्याय है और जीव तत्त्व त्रिकाल है, दोनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं।

जीवादि सात तत्त्व सिद्ध कब हों? सातों का स्वरूप भिन्न-भिन्न जाने तभी सात तत्त्व सिद्ध होते हैं, तो भी सात तत्त्व के भेद के सामने देखकर श्रद्धा करना व्यवहार श्रद्धा है, और अभेद स्वभाव-सन्मुख होकर रागरहित प्रतीति करना परमार्थ श्रद्धा है। जो व्यवहार सम्यक्त्व कहा है, वह तो ज्ञान का उसप्रकार का क्षयोपशम तथा राग है; वास्तव में व्यवहार श्रद्धा वह सच्चा सम्यक्त्व नहीं है। सम्यक्त्व तो एक ही प्रकार का है। शुद्ध कारणपरमात्मा की निर्विकल्प श्रद्धा वही सच्चा सम्यक्त्व है, अन्य समस्त तो आरोप है।

सात तत्त्व तो भेद से हैं अर्थात् सातों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं, ऐसे सात तत्त्वों का सर्वज्ञ भगवान की वाणी में कथन है। सर्वज्ञ और संपूर्ण दोषरहित, उनकी समस्त पदार्थों का कथन करनेवाली वाणी और उसमें कथित अंतस्तत्त्व तथा बहिस्तत्त्व अथवा जीवादि सात तत्त्वों का सम्यक् श्रद्धान वह व्यवहार श्रद्धा है। यह भी अभी रागवाली श्रद्धा है, यह धर्म नहीं है। धर्म तो अखंड चैतन्यस्वभाव की निर्विकल्प श्रद्धा करना है।

इस पंचम गाथा में ऐसा कहा कि अरहंत भगवान को मानना व्यवहार सम्यक्त्व है, वह पुण्य है। धर्म तो आत्मस्वभाव की पहचान से है। आत्मा के स्वभाव को पहचानने के लिये सर्वज्ञ को पहचानना चाहिये, तद्नुसार सर्वज्ञ कथित तत्त्वों को तथा आगम को भी पहचानना योग्य है।

अब पाँचवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहते हैं :-

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किं भक्तिरत्र न शमस्ति।
तर्हि भवांबुधिमध्यग्राहमुखांतर्गतो भवसि ॥१२॥

भव के भय का भेदन करनेवाले इन भगवान के प्रति यदि तुझे भक्ति नहीं है तो तू भवसमुद्र के मध्य में रहनेवाले मगर के मुख में है। भगवान कैसे हैं ? कि भव-भय भेदक हैं। उन्होंने स्वयं तो अपने भवों को भेद ही डाला है, और निमित्तरूप से दूसरों के भव को भी छेदनेवाले हैं। भगवान ने जो कहा वह पहचान कर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान से जिसने अपने भव का नाश किया उसके भव-भय भेदने में भगवान निमित्त हैं। ऐसे श्री सर्वज्ञ परमात्मा को पहचान कर उनके प्रति यदि तुझे भक्ति नहीं तो हे जीव! तू भवसमुद्र के मध्य में निवास करनेवाले मगर के मुख में है। चौरासी के अवतारूपी मगरमच्छ तुझे निगल लेंगे अर्थात् तेरा अवतार मिटेगा नहीं।

एक तरफ तो भव-भय रहित होने की बात की और उसके समक्ष भव-समुद्र की बात की। जो सर्वज्ञ भगवान को पहचान कर, उनके प्रति भक्तिपूर्वक, सर्वज्ञ ने जो कहा है, उसे पहचाने तो उसके भव-भय का छेद हो जाता है। भगवान कहीं किसी के ऊपर प्रसन्न होकर किसी का भव-छेदन नहीं करते। परंतु जिसने आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करके अपने आत्मा की प्रसन्नता प्रकट की तब आरोप से कहा जाता है कि भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न हुए। भगवान कथित तत्त्वों को जो पहचानता नहीं, उसे चौरासी के भ्रमण का अंत नहीं आता। पुण्य-पाप से पार चैतन्य स्वभाव को पहचानना ही भगवान की परमार्थ भक्ति है; यदि ऐसे भक्ति करे तो भव का नाश हो।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

आत्मा क्या कर सकता है ? यह बात चलती है। शरीर, जड़कर्म, लक्ष्मी वगैरह का परिवर्तन - वर्तमान दशा उनसे होती है ऐसा नहीं जानता हुआ—अज्ञानी 'मैं हूँ तो अवस्था (परिवर्तन) होती है', ऐसा मानता है। किंतु कोई जीव पर का तीन काल तीन लोक में किसी प्रकार से कुछ नहीं कर सकता। मात्र मिथ्या वासना और शुभाशुभ राग को करता है अथवा शुद्धभाव को कर सकता है।

यहाँ विशेष ऐसा जानना कि शुद्ध-अशुद्ध भावों का परिणमन है, उसको जीव कर सकता है। लेकिन हाथ-पैर हिलाना, बोलना अथवा लिखना आदि व्यापाररूप क्रिया को कोई जीव किसी प्रकार से नहीं कर सकता। जड़पदार्थ जगत की स्वतंत्र वस्तु है। इससे उसकी विकारी पर्याय अथवा अविकारी पर्याय, संयोग अथवा वियोग, गति अथवा स्थिति का परिवर्तन वह जड़ स्वतंत्रकर्ता द्वारा होता है। जीव से उसकी पर्याय नहीं होती। जीव तो ज्ञातामात्र स्वभाव को भूलकर पुण्य, पाप, दान, हिंसादि भाव को करता है अथवा शुद्ध हूँ ऐसा पहिचानकर स्वलक्ष्य से शुद्ध भाव को करता है।

अब दाल, भात, साग, रंग वगैरह जीव नहीं करता, तब कौन करता है ? कोई ईश्वर करता है ? नहीं। प्रत्येक वस्तु नित्य है, स्वतंत्र परिणामी है। काला या सफेद रूप, शरीर, वस्त्र, वगैरह अवस्था पुद्गल से होती है। क्योंकि उसकी सत्ता का जीव की सत्ता में त्रिकाल अत्यंताभाव है। कोई आत्मा उसका व्यवहार से भी कर्ता नहीं है। जीव स्वयं के भाव में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय को तो करे; सम्यक्त्व, व्रत, अकषाय, अप्रमादरूप स्वयं की अवस्था को तो करके; किंतु पर का सुधार अथवा बिगाड़ जीव कर नहीं सकता। आत्मा तो स्वभाव को अवलंबन कर शांति (वीतरागी) दशा कर सकता है और पर के अवलंबन से अशांति, रागद्वेष, ममतारूप भाव कर सकता है। स्वयं में स्वयं के हित-अहित भाव कर सकता

है। हाथ-पैर वगैरह की क्रिया जीव कर सके ऐसा न समझो। शरीर की अवस्था—अनेक प्रकार से रोग-निरोग होना—व्यवहार से भी जीव उसका कर्ता नहीं है। अज्ञानभाव से अथवा ज्ञानभाव से कोई जीव पर की अवस्था (पर्याय) किसी प्रकार नहीं कर सकता, केवल मानता है, और स्वयं की वर्तमान पर्याय में राग-द्वेष अज्ञान करता है; ऐसा जिसको ज्ञान होता है, उसका कर्तापने का अभिमान दूर हो जाता है। मेरे में शुद्धता अथवा अशुद्धता मेरे करने से होती है। इतना ही कर्तृत्व मेरे आधीन है। जीव की प्रभुता जीव में है, बाहर में नहीं है। तो भी पर में प्रभुता मानना वह महान् भ्रम (भ्रमणा) है और वह संसार में अनंत जन्म-मरण का मूल है।

दूसरे, आत्मा को कोई दूसरा सुधार या बिगाड़ नहीं सकता। जिसकी जितनी योग्यता हो उस अनुसार उसमें उसके ज्ञान का विकास होता है। बाहर में संयोग-वियोग, धनिक-निर्धन, रोग-निरोग, जीवन-मरणादि सब उसके समय में जो होनेवाला है, होने का है, वही होता है; इसमें किसी की होशियारी (चतुराई) नहीं है। अज्ञानी ममत्वबुद्धि से मानता है कि मैं करता हूँ।

ज्ञानी जानता है कि मैं पर का, इस शरीर का अथवा बाहर का कुछ कर नहीं सकता; जड़ कर्म को लेकर मेरे में राग-द्वेष, सुख-दुःख की अवस्था नहीं होती। ऐसी स्वतंत्रता निश्चित करे तो सारे संसार का अभिमान दूर होकर सर्व प्रकार से स्वतंत्र हूँ ऐसा भान होता है और सुखी होने का अवसर आता है। और ऐसा न समझे—उसको मैं पर का करूँ, मैं ऐसा करा सकूँ, इस मिथ्या कर्तृत्व की मूढ़ता नहीं जाती - और यह मूढ़ता ही अनंत संसार का कारण है। मैं ऐसा बोलूँ, ऐसा भोजन बनाऊँ, मैं चाव कर खाऊँ तो निरोगता रहती है; ऐसा भाव करे भी, लेकिन कोई जड़ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। हाँ! उल्टा-सीधा माना है, उस मान्यता का कर्ता यथार्थ में है; लेकिन हस्तादि की कोई क्रिया का कर्ता आत्मा है, ऐसा कभी नहीं समझना चाहिये।

आत्मा तो नित्य निरंजन (मलिनता रहित), निष्क्रिय (पर के तथा क्षणिक विकार के कर्तृत्व रहित) है। ऐसा प्रत्येक आत्मा का ज्ञायक चिदानंदस्वरूप है। लेकिन अज्ञानी को उसका श्रद्धान नहीं है। इससे वह जीव को ही शरीर, जड़कर्म तथा रागादि भावकर्म का कर्ता कहता है। ज्ञानी तो नित्य ज्ञानस्वभाव का स्वामी और कर्ता है। पर-भाव संबंधी व्यवहार से भी

अज्ञानी को कर्ता कहा है, ज्ञानी को नहीं; क्योंकि ज्ञानी को निमित्त बुद्धि नहीं है। इसलिये इस निज शुद्ध स्वभाव आत्मा में ही सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-अनुभवरूप भावना करना चाहिये। कमजोरी-दुर्बलता से राग का अंश होय, वह मुख्य नहीं है; और शरीर की क्रिया हो, उसमें ज्ञानी निमित्त भी नहीं है। मैं निमित्त-कर्ता हूँ तो पर की व्यवस्था, शरीर वगैरह की क्रिया होती है – ऐसा अज्ञानी मानता है। वह उसकी विपरीत मान्यता का कर्ता है, और उस अज्ञानी को ही आरोप से, व्यवहार से, कर्ता कहा है। ज्ञानी तो अशुद्ध पर्याय और निमित्त को जानता है, और अक्रिय ज्ञायकस्वभाव को ही मुख्य कर अपनी ओर झुकता हुआ निर्मल स्वभाव का कर्ता होता है; और वही धर्म है।

राग द्वारा अथवा ज्ञान द्वारा पर का कुछ नहीं किया जा सकता। लेकिन 'मैं हूँ तो उसका होता है' ऐसी निमित्तदृष्टि अज्ञानी को छूटती या दूर नहीं होती।

एक-एक गाथा में पाँच-पाँच अर्थ आते हैं। शब्दार्थ नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, और भावार्थ। उनमें व्यवहार से 'कर्ता में' शब्दार्थ और नयार्थ तो कहा। मतार्थ में सांख्यमती जैसे सर्वथा अकर्तावादी अथवा मिथ्यादृष्टि अथवा जो केवल पर को ही कर्तृत्व मानते हैं, उसका निषेध हुआ। आगम में कहा है कि संप्रदाय में रहनेवाले जैननामधारी, आत्मा को एकांत से अपरिणामी मानकर कर्म को ही कर्ता मानते हैं। रागादि का कर्ता जीव नहीं है ऐसा एकांत से मानते हैं। वे आगम के अर्थ को समझते नहीं हैं। और भावार्थ—शुद्धनय से शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ॥८॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स॥९॥

व्यवहार से आत्मा सुख-दुःखरूप कर्मफल का भोक्ता है, और निश्चय से वह स्वयं के चेतन भावों का ही भोक्ता है। आत्मा के स्वभाव को भूलकर पूर्व में जो शुभाशुभ कर्म बाँधे उनके फल (कर्मोदय) में बाह्य में अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री मिली, वह हर्ष-शोक में निमित्त है; इसलिये आत्मा को व्यवहार से बाहर के सुख-दुःख का भोक्ता कहा है।

अशुद्ध निश्चय से वह स्वयं के हर्ष-शोक वगैरह भावों को भोगता है। निश्चय से आत्मा पर को नहीं भोगता। आत्मा ठण्डी-गर्मी को नहीं भोगता, बिच्छू काटे उसका अनुभव

आत्मा नहीं करता। लेकिन उस समय के स्वयं के भाव को वह भोगता है। स्वभाव को भूलकर हर्ष-शोक करे तब परसंयोग की ओर झुकाव होता है, इससे संयोग का भोक्ता व्यवहार से कहा है। और स्वयं की अवस्था में होनेवाले हर्ष-शोक भाव को भोगता है, वह अशुद्ध निश्चयनय से है। तथा सहज स्वभाव में श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता से जो स्वाभाविक आह्लादरूप आनंद प्रगट होता है, उसका भोक्ता निश्चय से है। यहाँ तात्पर्य ऐसा है कि पर के लक्ष्य से फल भोगना छोड़कर स्वभाव की दृष्टि और रमणता द्वारा परमार्थ सुख का भोक्ता हो।

स्वयं की शुद्ध आत्मा के ज्ञान से पारमार्थिक सुखरूपी अमृत की उत्पत्ति होती है। उस परमार्थ सुख का स्वाद जिसने प्राप्त नहीं किया, ऐसा जीव परलक्ष्य से हर्ष-शोक करता है - और इससे वह जीव उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से पंचेन्द्रियों के इष्ट-अनिष्ट विषयों को भोगता है।

बासी और बचा-खुचा झूठा भोजन कौन खाता है ? जिसको ताजा और मिष्ट भोजन न मिलता हो, वह खाता है। लेकिन जिसको ताजा मिष्ठान्न मिलता हो, वह बचा-खुचा झूठा नहीं खाता। वैसे ही यहाँ कहते हैं कि पंचेन्द्रिय के विषयों की ओर झुकने का भाव किसको होता है ? जिसने अंतर में चिदानंद स्वभाव के परमानंद का स्वाद नहीं जाना, वह जीव बाहर के विषयों में हर्ष-शोक करके उसको भोगता है। ज्ञानी को अल्प हर्ष-शोक का भाव आये और विषयों की ओर झुकाव होता है, उसकी यहाँ मुख्यता नहीं है; क्योंकि उसने अंतर के स्वभाव के परमानंद का स्वाद अनुभव किया है, इसलिये बाहर में सुख बुद्धि नहीं होती। अरे आत्मन्! तेरा सुख संयोगों में नहीं है, और संयोग की ओर के झुकाववाले भावों में तेरा सुख नहीं है। तेरा सुख तेरे परमार्थ स्वभाव के ज्ञान से ही है।

चैतन्य को भूलकर जड़कर्म में हर्ष-शोक करके उसको जो भोगता है, वह संयोग का भोक्ता उपचरित असद्भूत व्यवहार से ही है, और जड़कर्म का भोक्ता अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से है। संयोग तो आत्मा से दूर है, इसलिये उसका उपचार से भोक्ता कहा है; और कर्म के साथ निकट का संबंध है, इसलिये उसका भोक्ता अनुपचरित व्यवहार से कहा; और अंदर के हर्ष-शोक वगैरह अशुद्ध भावों का भोक्ता अशुद्ध निश्चय से है। मकान, पैसा, वस्त्र, भोजन वगैरह पदार्थ आत्मा से भिन्न हैं, पृथक हैं; उनका भोक्ता असद्भूत व्यवहार से है। पापकर्म के

उदय से शरीर में छुरा घोंपा जाए और द्वेष हो; वहाँ जड़कर्म का तथा छुरे के संयोग का भोक्ता परमार्थ से आत्मा नहीं है। केवल व्यवहार से उसका भोक्ता कहा जाता है; और जो द्वेष का भाव किया उसका भोक्ता अशुद्ध निश्चय से आत्मा है। बाह्य में अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिलना वह पूर्व कर्म का फल है। और उनके लक्ष्य से हर्ष-शोक करना, वह स्वयं का वर्तमान अपराध है।

शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श के लक्ष्य से जीव राग-द्वेष करता है, उसमें वह वस्तु निमित्त है। उसका ज्ञान कराने के लिये केवल व्यवहार से कहा कि पाँच इंद्रियों के विषयों को जीव भोगता है, लेकिन वह पृथक् वस्तु होने से यथार्थ में उसको भोग नहीं सकता, लेकिन भोगता है ऐसा कहना, वह उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। स्त्री-पुत्रादि की व्यवस्था (सुभीता, सुविधा, अनुकूलता) मैं भोगता हूँ ऐसा कहना निमित्त की ओर का अविचारितरम्य उपचार है। असद्भूत होने से असत्यार्थ है, उपादेय नहीं है। ऐसा जाने तो पर से उपेक्षावान होकर हर्ष-शोकरूप मनोदय को भी गौणकर एक ज्ञायक स्वभाव-सन्मुख देखनेवाला होता है।

इसप्रकार स्वभाव को देखनेवाले सम्यग्दृष्टि को ही स्वभाव में लीनतारूप धर्म होता है। संयोगी दृष्टिवाला असंयोगीचिदानंद अमृत भोजन को भूलकर-छोड़कर पर को अनुकूल-प्रतिकूल मानकर, पर से हर्ष-शोक, सुख-दुःख मानता है, और उसप्रकार के विकार का अनुभव करता है। छुरी, कांटा, विष, मिसरी को अनुभव करता है-ऐसा कहना यह निमित्त का उपचार कथन है। परमार्थ से जीव पर का भोक्ता नहीं है, ऐसा जाने तो कि मैं पर से भिन्न चिदानंद का ही भोक्ता हूँ - ऐसा जानकर स्वयं को अनुभव करता है।

ज्ञानावरणादि आठ कर्म एकक्षेत्र में रहते हैं, उनके उदय को जीव भोगता है-ऐसा कहना वह अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। साता-असाता कर्म के उदय से जीव को सुख-दुःख होता है - ऐसा कहना वह भी उपचार है। कर्म से सुख-दुःख नहीं है, लेकिन एकक्षेत्र संबंध की अपेक्षा से अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से भोक्ता है। कर्म से राजा, कर्म से रंक, और कर्म से दुबला-मोटा, उल्टा-सीधा होता है, यह निमित्त का कथन है। जड़ कर्म को और कर्म के फलरूप संयोग को जीव नहीं भोग सकता। अज्ञानी चैतन्य को भूलकर मानता है कि मैं कर्म और संयोग को भोगता हूँ।

अब हर्ष-शोक, रति-अरति, सुख-दुःख की भावना अरूपी विकारी भाव जीव में जीव से होते हैं। उसका अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा भोक्ता है, ज्ञानानंद से विरुद्ध भाव है, इसलिये अशुद्ध और स्वयं की पर्याय में स्वयं करता है, इसलिये निश्चय। सहजानंदी अतीन्द्रिय सुख को नहीं भोगनेवाला अज्ञानी आत्मा स्वयं की दशा में उसका भोक्ता है। कर्म संयोग अथवा कोई जीव सुख-दुःख कराता है - ऐसा नहीं है। द्रव्य-गुण तो पर में निमित्त भी नहीं कहे जाते, लेकिन एक समय की जीव की उत्पादरूप पर्याय को जड़कर्म की उत्पादरूप पर्याय एक समय प्रमाण निमित्त होती है। धर्म-अधर्म, शांति-अशांति, सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान, वर्तमान पर्याय में ही होते हैं। वह स्वयं की उस समय की योग्यता से होते हैं। वहाँ निमित्तरूप पर की अवस्था होती है, दोनों स्वतंत्ररूप से काम करते हैं।

शुद्ध निश्चयनय से आत्मा त्रिकाल ज्ञानानंद से पूर्ण निज का असली (शुद्ध) स्वभाव है, उसको भोगता है। निर्मल ध्रुव परमअमृत का शाश्वत कुंड - ऐसा परमात्मस्वभाव, वह आत्मा है। उसमें सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-तन्मयता से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय आनंदरूप एक लक्षण का धारक जो सुखामृत है, उसको भोगता है। यहाँ वर्तमान निर्मल पर्याय की बात है। शुद्ध द्रव्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई अमृतानंद पर्याय को आत्मा भोगता है - ऐसा कहा है।

ध्रुव स्वभाव के आश्रय से अनेक नवीन निर्मल पर्यायें हैं, तो भी वे एकता (अभेदता) को प्राप्त करती हैं, इसलिये एक लक्षणधारक सुखामृत कहा है, उसको धर्मात्मा नित्य भोगता है। पर्याय भोगी जाती है, लेकिन द्रव्य-गुण नहीं भोगे जाते। संयोग और कर्म की पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। उसके लक्ष्य से होनेवाला विकार अनेक प्रकार से पृथक्-पृथक् खंड-खंड होता है। लेकिन द्रव्य स्वभाव के अवलंब से नयी-नयी निर्मल अवस्थायें अनेक होती हैं, तो भी एकता की पुष्टि होती है। वह एकता समता-वीतरागता को ही अभिनंदित करती है।

यह भोक्तृत्व का अधिकार चलता है। पाँच इंद्रियों के विषयों में राग निमित्त है, इससे शब्द, रूप, रसादि का भोक्ता-अज्ञानी जीव को उपचरित असद्भूत व्यवहार से कहा है; और अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से वह कर्म का अनुभव करता है; और अशुद्ध निश्चयनय से हर्ष-शोक, सुख-दुःख की भावना का वेदन करता है। वह मलिन भाव है इसलिये अशुद्ध है। स्वयं-स्वयं की अवस्था में तन्मय होकर वेदन करता है, इसलिये निश्चय से उस अज्ञानी का

अशुद्ध वेदन है ऐसा ज्ञानी जानता है। निमित्त, संयोग, विकार में एकत्वबुद्धि छोड़कर अतीन्द्रिय शुद्धदृष्टि से त्रिकाल अखंडानंद निज परमात्मस्वभाव के अभेद श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से उत्पन्न सहजानंद एक लक्षणरूप सुखामृत को वह भोगता है। अतः ज्ञानी जीव को शुद्ध निश्चयनय से उस शुद्ध स्वभाव का भोक्ता कहा है।

जो ज्ञायक स्वभाव से उत्पन्न होनेवाला ऐसा अतीन्द्रिय आत्मिक सुख उसके स्वाद से रहित त्रिकाल ज्ञानानन्द को भूलकर पंचेन्द्रियों के विषयों में सुख मानता है, वह संसार में भ्रमण करता है। वह इंद्रियसुख आकुलतामय होने से हेय है। और वीतरागी मोक्षमार्ग के कारणरूप त्रिकाल ज्ञानानंद स्वभाव है, उसमें एकाग्रता से उत्पन्न अतीन्द्रिय आनंद जो निश्चय मोक्षमार्गरूप शुद्ध उपयोग है, वही सर्व प्रकार से उपादेय है ऐसा इस गाथा का भावार्थ है।

क्षणिकवादी बौद्ध का मत हे कि जीव कर्ता-कर्म के फल को नहीं भोगता। उसका खंडन करने के लिये प्रत्येक संसारी जीव कर्म-फल का, हर्ष-शोक का, तथा शुद्ध आत्मिक सुख का भोक्ता है - ऐसा कहा है। यह मतार्थ है। *(क्रमशः)*

पीते बने तो पी

आचार्यदेव करुणा से कहते हैं कि—हे अंध! तुझे व्यापार में बहीखाता आदि अनेक कलाओं का ज्ञान है; और तेरे सुख का निधान तेरी वस्तु उसका तुझे ज्ञान नहीं! तू अंध है। तू स्वयं ज्योतिस्वरूप है, सुख का धाम है, उसका तुझे ज्ञान नहीं, भान नहीं, श्रद्धा नहीं; और दुख के कारणभूत बाह्य पदार्थों का ज्ञान है। यह कैसी बात है?

मुनिराज योगीन्दुदेव कहते हैं—अरे जीव! तुझे कब तक संसार में भटकना है? तू अभी तक थका नहीं? अब तो आत्मा में आकर आत्मिक आनंद भोग। अहा! जैसे पानी का झरना बहता हो वैसे यह धर्म का झरना बहता है—पीते बने तो पी। जैसे पुण्यशाली को पग-पग पर निधान मिलता है, वैसे आत्म-पिपासु को पर्याय-पर्याय पर आत्मा में से आनंदनिधान मिलता है।

— पूज्य स्वामीजी

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– दर्शनोपयोग में शुभ और अशुभ ऐसे भेद पड़ते हैं कि नहीं ?

उत्तर– नहीं–शुभ और अशुभ ऐसे भेद न तो दर्शनोपयोग में हैं और न ज्ञानोपयोग में हैं, यह तो चारित्र के आचरणरूप उपयोग के भेद हैं। चारित्र के आचरण में शुभ, अशुभ और शुद्ध ऐसे तीन प्रकार हैं; उन्हें शुभ, अशुभ अथवा शुद्ध उपयोग कहा जाता है।

प्रश्न– एक सूक्ष्मपरमाणु अथवा सूक्ष्मस्कंध क्या अकेला स्थूलरूप से परिणमन करता है ?

उत्तर– नहीं–दूसरे स्थूलस्कंध के साथ मिलने पर ही उसमें स्वयं स्थूलरूप परिणमन होता है। जिसप्रकार अनादि का अज्ञानी जीव, ज्ञानी के निमित्तपूर्वक ही ज्ञानी होता है; उसीप्रकार स्थूलस्कंध के निमित्तपूर्वक ही दूसरा सूक्ष्मस्कंध या परमाणु स्थूलरूप से परिणमन करता है। यह अनादि नियम है।

प्रश्न– एक परमाणु को आँख से अथवा सूक्ष्मदर्शी यंत्रादि से देख सकते हैं क्या ?

उत्तर– नहीं, पाँच इंद्रियों संबंधी ज्ञान का वह विषय नहीं है। अवधिज्ञान से परमाणु को जान सकते हैं; किंतु अवधिज्ञान बाहर के किसी साधन से होता नहीं, अवधिज्ञान आँख से भी जानता नहीं; तथा परमाणु को जान सके ऐसा सूक्ष्म अवधिज्ञान तो ज्ञानी के ही होता है – अज्ञानी को ऐसा अवधिज्ञान नहीं होता। अर्थात् यह नियम है कि जो एकत्वरूप परम आत्मा को जानता है, वही परमाणु को जान सकता है।

प्रश्न– जो मुनि आहारक शरीर प्रकृति बाँधे उसके वह उदय में आवे ही आवे – ऐसा कोई नियम है ?

उत्तर– नहीं, कोई आहारक शरीर नामकर्म बाँधे, परंतु उसके उदय का अर्थात् आहारक शरीर की रचना का प्रसंग कभी भी न आवे, बीच में ही उस प्रकृति का छेद करके मोक्ष प्राप्त

कर ले – परंतु तीर्थंकर नामकर्म में ऐसा नहीं बनता, वह तो जिसके बँधता है, उसके नियम से उदय होता है। आहारक शरीर प्रकृति सातवें या आठवें गुणस्थान से बँधती है किंतु उदय छठे गुणस्थान में होता है। कोई जीव क्षपकश्रेणी माँडते समय आहारक शरीर प्रकृति बाँधे और सीधा केवलज्ञान प्राप्त कर ले तो छठे गुणस्थान में वापस गिरने का और आहारक शरीर की रचना का प्रसंग ही नहीं बनेगा। छठे गुणस्थान में आहारक शरीर की रचनावाले मुनिवर एक साथ अधिक से अधिक ५४ ही होते हैं।

प्रश्न– दर्शनमोहनीय की एक प्रकृति का नाम 'सम्यक्त्व प्रकृति' क्यों है ?

उत्तर– क्योंकि उसके उदय से साथ सम्यक्त्व भी होता है अर्थात् सम्यक्त्व की सहचारिणी होने से उसका नाम 'सम्यक्त्व प्रकृति' पड़ा है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ उसका उदय होता है।

प्रश्न– संख्या की अपेक्षा से बड़े से बड़ा अनंत कौन ?

उत्तर– केवलज्ञान का अविभाग प्रतिच्छेद सबसे महान अनंत है। अलोकाकाश के प्रदेश इत्यादि दूसरे अनंत से भी वह अनंत गुना है–ऐसा कहकर भी उसका माप नहीं निकाला जा सकता। आत्मद्रव्य की यह कोई अचिंत्य शक्ति है। जिसप्रकार विकल्प से उसकी शक्ति का पार नहीं पाया जा सकता, उसीप्रकार गणित से भी उसकी शक्ति का पार नहीं पाया जा सकता।

प्रश्न– भरतक्षेत्र का जीव मरकर सीधा विदेह में जन्म लेता है, क्या ?

उत्तर– हाँ–यदि मिथ्यादृष्टि है तो विदेह में जन्म ले सकता है। परंतु आराधक मनुष्य मरकर कर्मभूमि के मनुष्यों में (विदेहादि में) जन्म नहीं लेता –ऐसा नियम है। विराधक जीव तो चाहे जहाँ जन्म ले सकता है। कदाचित् किसी मनुष्य को पूर्व में मिथ्यात्व दशा में मनुष्यायु का बंध हो गया हो, पश्चात् सम्यक्त्व (क्षायिक) प्राप्त हो जाये तो वह आराधक जीव मरकर मनुष्य में उत्पन्न होगा, परंतु वह असंख्यात वर्ष की आयुष्यवाली भोगभूमि में मनुष्य होगा, कर्मभूमि में जन्म नहीं लेगा, ऐसा नियम है। विदेहक्षेत्र भी कर्मभूमि है। भोगभूमि में चतुर्थ गुणस्थान से ऊपर का कोई गुणस्थान

नहीं होता और वहाँ का जीव मरकर नियम से स्वर्ग में ही जाता है।

प्रश्न– केवलज्ञानी के शरीर में निगोदिया जीव होते हैं क्या ?

उत्तर– नहीं–केवलज्ञानी का परमौदारिक शरीर होता है, अत: उसके आश्रय से निगोदिया जीव नहीं होते। यद्यपि आकाश के उसी क्षेत्र में होते हैं–क्योंकि लोक में सर्वत्र निगोदिया जीव भरे पड़े हैं; तथापि वे जीव परमौदारिक शरीर के आश्रित नहीं हैं। केवली का परमौदारिक शरीर, मुनि का आहारक शरीर, देवों का तथा नारकियों का वैक्रियक शरीर तथा पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय और तेजोकाय – इन स्थानों के आश्रय से निगोदिया जीव नहीं होते।

प्रश्न– जिनवर कथित व्यवहारचारित्र का सावधानीपूर्वक पालन सम्यग्दर्शन होने का कारण होता है या नहीं ?

उत्तर– रंचमात्र भी कारण नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने का कारण तो अपना त्रिकाली आत्मा ही है। जिनेन्द्र कथित व्यवहारचारित्र को सावधानीपूर्वक और परिपूर्ण पाले तथापि उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ – पूज्य गुरुदेव सुख-शांति में विराजमान हैं, उनका स्वास्थ्य ठीक है। प्रात:काल समयसार कलश पर तथा सायंकाल समयसार पर प्रवचन चल रहे हैं। शिक्षण शिविर एवं प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर पूज्य स्वामीजी के समयसार में समागत ४७ शक्तियों पर अत्यंत मार्मिक एवं गूढ़ प्रवचन हुए। नये-नये गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन हुआ। कर्ता-कर्म अधिकार पर हुए प्रवचन भी अत्यंत मार्मिक थे। **—संपादक**

प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर सानंद संपन्न

सोनगढ़ – दिनांक ३१-८-७७ के प्रात: ९ बजे पूज्य स्वामीजी के प्रवचन के उपरांत स्वामीजी की उपस्थिति में विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई के द्वारा प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर का मांगलिक उद्घाटन हुआ। इस शिविर में भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों से पधारे १४१ प्रवचनकारों ने भाग लिया।

इस अवसर पर पूज्य गुरुदेव के आत्मशक्तियों के रहस्य को उद्घाटन करनेवाले अभूतपूर्व प्रवचनों के साथ-साथ प्रात: ९ से १० तक तत्त्वार्थसूत्र के ४ अध्यायों पर एवं सायंकाल ४ से ५ तक दशलक्षण धर्मों पर श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने कक्षाएँ लीं। दोपहर में १ से २ तक मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार पर वक्ता के स्वरूप, नय आदि के विषय की कक्षा श्री नेमिचंदजी पाटनी ने ली। उक्त कक्षाओं में प्रवचनकारों को समाज की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए प्रवचनशैली संबंधी अनेक निर्देश भी दिये गये।

इसके अतिरिक्त कतिपय लोगों को तत्त्वार्थसूत्र की समुचित तैयारी के लिये श्री पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा ने प्रात: ५ से ६ तक कक्षा ली। शाम को ८ से ९ तक विभिन्न विद्वानों के प्रवचन होते थे, जिनमें सर्वश्री पंडित लालचंदभाई, खीमचंदभाई, बाबूभाई, शशिभाई, नवलभाई, प्राणभाई, हीराभाई, ज्ञानचंदजी तथा रतनचंदजी प्रमुख थे।

सभी ने इस १५ दिवसीय प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर की उपयोगिता अनुभव की एवं भविष्य में भी ऐसे शिविर लगाये जाने के लिये आग्रह व अनुरोध किया।

आवश्यक सूचना – श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर द्वारा फरवरी १९७८ में ली जानेवाली परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये प्रवेश फार्म भरकर भेजने की

अंतिम तिथि ३१-१०-७७ है। अत: प्रवेश फार्म भरकर शीघ्र भेजने की कृपा करें।

खाली फार्म संबंधित केंद्रों को शीतकालीन परीक्षा सन् १९७७ के प्रमाण पत्रों के साथ अगस्त माह में भेजे जा चुके हैं। जिन्हें न मिले हों या आवश्यकता से कम पड़ते हों, तो कार्यालय को तुरंत सूचित करें। प्रवेश फार्म शुद्ध और साफ राइटिंग में भरें।

नयी संस्थाएँ नियमावली एवं प्रवेश फार्म नि:शुल्क मंगा लें। **— मंत्री, परीक्षा बोर्ड**

महापर्व दशलक्षण समाचार

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ की ओर से दशलक्षण महापर्व के अवसर पर लगभग ९५ विद्वान प्रवचनार्थ भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में भेजे गये थे। स्थान-स्थान से निरंतर समाचार आ रहे हैं, जिनमें उनके द्वारा हुई धर्म प्रभावना की चर्चा के साथ-साथ सारे देश में एक आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर देने के लिये पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की गई है तथा साथ ही स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के प्रति आभार व्यक्त किया है। स्थानाभाव के कारण प्राप्त विस्तृत समाचारों को देना संभव नहीं है, फिर भी कतिपय प्रमुख नगरों के संक्षिप्त समाचार यहाँ दिये जा रहे हैं।

बम्बई (दादर) - इस वर्ष श्री पंडित लालचंदभाई अमरचंद मोदी राजकोट वालों का लाभ दादर समाज को प्राप्त हुआ। उनके समयसार कलश पर हुए आध्यात्मिक प्रवचनों से सब मुमुक्षुभाई आत्मविभोर हो गये। उनके प्रवचनों में अनुभव की गहराई रहती है।

जबलपुर - प्रख्यात आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता के पदार्पण से अद्‌भुत आनंद आया। आपके सरल, स्पष्ट तथा वैराग्यरस से ओत-प्रोत प्रवचनों ने जनता का मन मोह लिया। आपके तीनों समय के प्रवचनों में अपार जनसमूह उमड़ पड़ता था। स्थानीय समाज के अतिरिक्त बाहर गाँव से भी लोग आकर धर्मलाभ लेते थे। आपकी प्रेरणा से आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेकानेक ग्राहक बने। फिरोजाबाद से श्री पंडित श्यामसुंदरलालजी शास्त्री भी पधारे थे। दोनों ही विद्वानों का एक ही मंच से कार्यक्रम चला। अंत में आप दोनों को अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया।

भिंड - बम्बई से पधारे हुए सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित हिम्मतभाई जोबालिया के तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन

हुए। लगभग १५०० स्त्री-पुरुषों ने प्रभावित होकर अपनी पात्रतानुसार धर्मलाभ लिया। महती धर्म प्रभावना हुई। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये। **— इंद्रसेन जैन बजाज**

मेरठ – अध्यात्म प्रवक्ता श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर के पधारने से धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। नित्य प्रातःकाल जैन पंचायती धर्मशाला में दशधर्म पर तथा रात्रि में दिगम्बर जैन मंदिर मेरठ शहर में मोक्षमार्ग प्रकाशक पर आपके अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक प्रवचन हुए, जिनमें हजारों की संख्या में श्रोताओं ने धर्मलाभ लिया। भारिल्ल साहब की शैली इतनी तर्कसंगत एवं आकर्षक है कि श्रोताओं को तत्त्वज्ञान की गूढ़ चर्चा भी आसानी से समझ में आ जाती थी। डॉक्टर साहब के प्रवचनों को सुनकर अनेकों भाई कह उठे कि समाज में पंडित लोग व्यर्थ ही कानजीस्वामी को लेकर वितंडावाद मचा रहे हैं। पंडितजी के प्रवचन में कहीं भी ऐसा आभास नहीं मिला कि वे केवल निश्चय को मानते हैं और व्यवहार को नहीं। पंडितजी एक दिन के लिये हस्तिनापुर भी गये। वहाँ उन्होंने ज्ञानमती माताजी की धर्मसभा में प्रवचन दिया। अंत में मेरठ शहर की जैन समाज द्वारा विशेष आयोजित समारोह में भारिल्लजी को अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। **— राजेन्द्रकुमार जैन,** संपादक, वीर

अशोकनगर – आगरा निवासी श्री नेमीचंदजी पाटनी का पदार्पण होने से समाज में हर्षोल्लास का वातावरण छाया रहा। प्रातः, दोपहर एवं रात्रि के प्रवचनों में दशधर्म का स्वरूप, अरहंत भक्ति का स्वरूप तथा व्यवहाराभासी की भूल आदि प्रकरणों पर सारगर्भित प्रवचन हुए। आपकी प्रतिपादन शैली बहुत ही आकर्षक, स्पष्ट एवं मधुर होने से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किये बिना न रह सकी। सभी कार्यक्रम सुव्यवस्थित एवं प्रभावी ढंग से सानंद संपन्न हुए।

— हरकचंद बिलाला, मंत्री

आगरा – पर्वराज पर्यूषण पर श्री पंडित रतचंदजी भारिल्ली, एम.ए. विदिशा, संपादक 'जैनपथ प्रदर्शक' पधारे। आपके सभी कार्यक्रम सुव्यवस्थित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से संपन्न हुए। ताजगंज, नमक की मंडी, नाई की मंडी, धूलियागंज, एत्मादपुर आदि स्थानों पर आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया तथा समाज ने मंत्रमुग्ध होकर लाभ उठाया। अंत में आपको अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक बनाये गये।

— पदमचंद जैन

छिंदवाड़ा – पर्यूषण पर्व के शुभ अवसर पर श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा पधारे।

आपके प्रातः, दोपहर एवं रात्रि तीनों समय तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला तथा दशधर्मों पर अध्यात्म रस से ओत-प्रोत अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक प्रवचन होते थे। शंका-समाधान तथा तत्त्वचर्चा भी चलती थी। जैन-जैनेतर समाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। **— शांतिकुमार पाटनी**

बम्बई (भूलेश्वर) - स्थानीय चंद्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर में श्री पंडित उत्तमचंदजी एम.ए., सिवनी के पधारने से समाज में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। आपने आत्मा और धर्म पर युक्ति, आगम और अध्यात्म के आधार पर बड़े ही सारगर्भित प्रवचन किये। आपने तत्त्व और धर्म संबंधी विपरीत मान्यताओं तथा निश्चय और व्यवहार के यथार्थ मर्म को अनेक दृष्टांतों के साथ सरल ढंग से समझाया। प्रवचन बहुत ही हृदयग्राही रहे।

— मूलचंद पाटनी, संयोजक

ललितपुर - श्री पंडित पन्नालालजी ग्वालियर वाले पधारे। आपके प्रवचन प्रतिदिन तीनों समय तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक, समयसार तथा दशधर्मों पर होते थे। दोपहर में शंका-समाधान का कार्यक्रम भी चलता था। जिनवाणी को समझाने की आपकी अनुभवगम्य शैली से स्थानीय समाज बहुत ही प्रभावित हुई। **— अभयकुमार टडैया**

अहमदाबाद - रखियाल से श्री पंडित नेमीचंदभाई पधारे। आपके पधारने से अत्यधिक धर्म प्रभावना हुई। नवतत्त्व एवं दशधर्मों का स्वरूप आपने घरेलू दृष्टांतों के माध्यम से समझाया जो सहज ही समझ में आ जाता था। निश्चयपूर्वक व्यवहारज्ञान और जैनधर्म के अनुयायियों का सदाचार कैसा होना चाहिये - उसका विस्तृत रूप से विश्लेषण किया। वीतराग-विज्ञान परीक्षाबोर्ड की परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पारितोषिक वितरण भी किया गया। छात्रों द्वारा बालबोध भागों के आधार पर संवाद भी प्रस्तुत किये गये।

— रतीलाल भूराभाई देसाई

जयपुर - यहाँ श्री पंडित अभयकुमारजी जैन जबलपुर के आध्यात्मिक प्रवचनों की अमृतवर्षा हुई। प्रतिदिन दोनों समय पंडित टोडरमल स्मारक भवन में तथा बड़े दीवानजी के मंदिर में आपके प्रवचन मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर चलते थे। दृष्टांतों के माध्यम से आप गूढ़ रहस्य की गुत्थी को सहज ही सुलझा देते थे। आपकी विलक्षण प्रतिभा तथा अद्‌भुत प्रवचन शैली ने श्रोताओं का मन मोह लिया। अंत में रामलीला मैदान में उद्योगमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन की अध्यक्षता में क्षमावाणी पर्व मनाया गया। समारोह के मुख्य अतिथि श्री

भैरोंसिंहजी शेखावत, मुख्यमंत्री राजस्थान थे। इस अवसर पर पंडित अभयकुमारजी तथा पंडित मिलापचंदजी आदि विभिन्न वक्ताओं के भाषण हुए। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक भी बनाये गये। **— अखिल बंसल**

जयपुर (आदर्शनगर) – श्री पंडित विमलचंदजी झांझरी उज्जैनवाले पधारे। प्रतिदिन तीनों समय रहस्यपूर्ण चिट्ठी, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशधर्मों पर आपके सारगर्भित प्रवचन चलते थे। प्रातः दिगम्बर जैन तेरापंथी बड़े मंदिर में भी आपके आध्यात्मिक प्रवचन होते थे। आपके अनेक प्रेरणादायक उपदेशों से मुलतानी दिगम्बर जैन समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक भी बनाये गये। **—कपूरचंद जैन**

दिल्ली – मेरठ में पर्यूषण करने के तत्काल बाद डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल दो दिन के लिये दिल्ली पधारे। उनके दिनांक २८–९–७७ को प्रातः माडलबस्ती में व सायं शाहदरा में तथा २९–९–७७ को प्रातः भारतनगर में एवं सायं गांधीनगर में अत्यंत प्रभावक प्रवचन हुए। साथ ही उनके निर्देशन में मुमुक्षु मंडल की दो महत्त्वपूर्ण बैठकें भी हुईं, जिनमें तत्त्वप्रचार संबंधी कार्यक्रम में सक्रियता एवं तेजी लाने के लिये विचार–विमर्श के पश्चात् महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। **—सुरेन्द्रकुमार जैन**

कोटा – पर्वराज पर्यूषणपर्व पर श्री पंडित कन्नुभाई दाहोदवाले पधारे। प्रतिदिन आपके समयसार तथा दशधर्मों पर प्रवचन चलते थे, जिनमें भाग लेकर लोगों ने धर्मलाभ लिया। आपकी भक्ति का कार्यक्रम अद्वितीय रहा। द्रव्य की स्वतंत्रता का सिद्धांत एवं शुभराग में धर्म नहीं होता – आदि विभिन्न विषयों पर आपने विशदरूप से विवेचन किया। इस अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। **— लालचंद जैन**

लोहारदा – श्री पंडित नेमीचंदजी मलकापुरवाले पधारे। आपके आने से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। पूजन, विधान तथा भक्ति के कार्यक्रमों के साथ–साथ मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र, समयसार तथा दशधर्मों पर पंडितजी के प्रवचन होते थे। संपूर्ण समाज एकमत से सभी कार्यक्रमों में भाग लेता था। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक भी बनाये गये। **— मानकचंद पाटोदी, अध्यक्ष**

कुशलगढ़ – मौ से श्री पंडित मक्खनलालजी पधारे। प्रातः लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका

की कक्षा लगती थी तथा तीनों समय मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन चलते थे। पूजन तथा भक्ति, शंका समाधान आदि कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया।

— मथुरालाल जीतमल जैन

केसली – पर्यूषण पर्व में बीना से श्री पंडित बाबूलालजी टोपीवाले पधारे। आपके यहाँ पर चार समय लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला तथा समयसार पर अत्यंत रोचक ढंग से प्रवचन चलते थे। समाज को बहुत ही धर्मलाभ हुआ।

— हुकमचंद जैन

ग्वालियर – श्री पंडित घासीलालजी जैन गुनावालों के आध्यात्मिक प्रवचनों से स्थानीय समाज में नई जागृति उत्पन्न हुई। आपके सारगर्भित प्रवचनों से अपूर्व धर्मलाभ हुआ।

— चंपालाल जैन

जसवंतनगर – कोटा निवासी श्री पंडित रामकिशोरजी के दस दिनों के प्रवचनों में अमृतवर्षा हुई। आपके द्वारा तत्त्वार्थसूत्र एवं दशलक्षण धर्मों पर विशिष्ट विवेचन हुआ। सुगंध दशमी के दिन जुलूस निकाला गया। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक भी बनाये गये।

— प्रकाशचंद जैन, मंत्री

बूंदी – श्री पंडित ज्ञानचंदजी 'स्वतंत्र' गंजबासौदा से पधारे। आपके पधारने से समाज में अभूतपूर्व जागृति हुई। मोक्षमार्ग प्रकाशक, श्रावकधर्म प्रकाश आदि ग्रंथों के आधार पर श्रावक के षट्कर्म, सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्र, निमित्त–उपादान, जीव का स्वतंत्र परिणमन, व्यवहार की कसौटी पर निश्चय की उपादेयता, आदि विभिन्न विषय विविध दृष्टांतों से समझाये। पंडितजी की प्रवचनशैली प्रभावोत्पादक होने से समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा।

— महावीरकुमार काला, मंत्री

एत्मादपुर – आगरा से श्री सौभाग्यमलजी पाटनी पधारे। छहढाला तथा दशधर्म पर आपके प्रतिदिन प्रवचन चलते थे। आपके प्रवचनों से स्थानीय बंधुओं को वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझने का लाभ मिला। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने। एक दिन के लिये श्री पंडित रतनचंदजी भारिल्ल भी पधारे। उनका आकिंचन धर्म पर मार्मिक प्रवचन हुआ।

— अभयकुमार जैन

मौ – श्री पंडित झम्मकलालजी सोनगढ़वाले पधारे। आपके प्रतिदिन तीनों समय

तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा दशधर्मों पर अत्यंत गंभीर एवं सरल प्रवचन हुए। आपके प्रवचनों से यहाँ अध्यात्म की अच्छी प्रभावना हुई। क्षमावाणी पर्व भी सानंद मनाया गया तथा आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने। **— पातीराम जैन**

सागर – श्री पंडित डाह्याभाई मेहता अहमदाबाद वाले पधारे। पंडितजी के प्रवचन दशलक्षण धर्म, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा समयसार पर बड़ी ही सूक्ष्मता तथा आगम व अनुभव की पैनी पकड़ के साथ श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध किये रहते थे। पूज्य कानजीस्वामी के द्वारा बताये गये यथार्थ वस्तुस्वरूप को आपने अपनी चुटीली तर्कपूर्ण शैली द्वारा समझाकर श्रोताओं पर अमिट छाप छोड़ी है। **— मन्नूलाल जैन**

उदयपुर – श्री पंडित गोविंदरामजी खडेरीवाले पधारे। आपके प्रवचन प्रतिदिन चार बार क्रमशः समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशधर्मों पर चलते थे। समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक भी बनाये गये।

— उग्रसैन बंडी

महीदपुर – श्री पंडित महेन्द्रकुमारजी जैन बरायठा निवासी पधारे। पंडितजी ने विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किये। आपकी प्रवचनशैली अत्यंत सरल, रोचक एवं सारगर्भित होने से सभी को समझने में सहायक रही। **— कल्याणमल बड़जात्या**

पिपरई गाँव – श्री पंडित छगनलालजी लुहारदा तथा श्री पंडित सतीशकुमारजी एम.ए. कर्र के पधारने से स्थानीय समाज में महती धर्मप्रभावना हुई। दोनों विद्वानों के छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्मों पर अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक प्रवचन चलते थे।

— नाथूराम जैन, अध्यक्ष

जाम्बुड़ी – श्री पंडित रमेशकुमारजी, जयपुर के पधारने से स्थानीय समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रवचन प्रातः, दोपहर एवं सायं क्रमशः समयसार, छहढाला तथा दशधर्मों पर होते थे। इसके अतिरिक्त प्रथमानुयोग, भगवान महावीर, क्रमबद्धपर्याय, निश्चय-व्यवहार आदि विषयों पर भी आपने प्रकाश डाला। **— मन्नूलाल जैन**

गुना – करेली निवासी श्री पंडित कपूरचंदजी पधारे। आपके प्रवचनों से गुना जैन समाज ने अध्यात्म-गंगा में अपने आपको डुबाकर शीतलता प्राप्त की। पंडितजी द्वारा दशधर्मों

पर बड़ा ही सुंदर विवेचन किया गया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। पूर्णमासी के दिन श्री नेमीचंदजी पाटणी भी पधारे थे। उनका भी प्रभावक प्रवचन हुआ।

— कमल जैन, सचिव

कटंगी – ब्रह्मचारी पंडित बाबूलालजी बरायठावालों के पधारने से दशलक्षण महापर्व अति हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। प्रतिदिन लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। अनंत चतुर्दशी के दिन विशाल शोभायात्रा का आयोजन किया गया। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा 'जैनदर्शन' संवाद तथा बाल सेवा समिति द्वारा नाटक अभिनीत किया गया। आत्मधर्म के २० ग्राहक बनाये गये।

— डॉ० सनतकुमार

अम्बाह – श्री पंडित कैलाशचंदजी अशोकनगर वाले पधारे। आपके तीनों समय के प्रवचनों से स्थानीय समाज ने लाभ लिया। आपकी प्रेरणा से स्वाध्याय मंडल की स्थापना की गयी। आत्मधर्म के ३० तथा जैनपथ प्रदर्शक के १५ ग्राहक बनाये गये।

— मंत्री, प्रबंधकारिणी कमेटी

मुंगावली – श्री पंडित चिमनभाई सोनगढ़ के पधारने से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। श्रावक धर्मप्रकाश, छहढाला व दशलक्षण धर्म पर प्रतिदिन लगभग ३ घंटे आपके प्रवचन चलते थे। आपकी प्रेरणा से स्वाध्याय मंडल की स्थापना की गयी तथा आत्मधर्म के ३० ग्राहक बनाये गये। स्थानीय विद्वान श्री पंडित राजकुमारजी शास्त्री तथा श्री बाबूलालजी एडवोकेट के प्रवचनों का भी आयोजन किया गया।

— मंत्री, दिगम्बर जैन समाज

मलकापुर – श्री पंडित देवीलालजी उदयपुर के पधारने से समाज में बहुत-बहुत धर्म प्रभावना हुई। नियमसार तथा दशधर्म विषयों पर आपके बड़े ही मार्मिक प्रवचन हुए।

— होंसीलाल बंशीलाल सर्राफ

दमोह – श्री तारण-तरण दिगम्बर जैन चैत्यालय तथा नसियांजी मंदिर में श्री पंडित पन्नालालजी करेलीवालों के दशधर्म आदि विषयों पर बड़ी ही सरल, सुबोध भाषा में अत्यंत गंभीर एवं मार्मिक प्रवचन हुए। आपकी प्रेरणा से स्वाध्याय संघ की स्थापन की गयी।

— रतनचंद जैन, मंत्री

प्रतापगढ़ – श्री पंडित नंदकिशोरजी विदिशावाले पधारे। आपके प्रतिदिन तीनों समय

के प्रवचनों से जैन-जैनेतर समाज ने अभूतपूर्व लाभ लिया। आपके सटीक व रोचक दृष्टांतों से साधारण व्यक्ति ने भी तत्त्व का यथार्थ स्वरूप भली-भांति समझा। — **सज्जनलाल सांवरिया, मंत्री**

सनावद - बरायठा निवासी श्री पंडित विजयकुमारजी पधारे। प्रातः, दोपहर एवं रात्रि तीनों ही समय आपके प्रवचन बड़े ही सरल एवं सुबोध शैली में होते थे। आपके पधारने से समाज में विशेष प्रभावना हुई। — **सोनचरण जैन, मंत्री**

इटारसी - पंडित गोटीलालजी चौधरी पिपरई के आने से अच्छी धर्म प्रभावना हुई। पूजन, विधान, भक्ति तथा शास्त्र-प्रवचन में अधिक से अधिक लोगों ने भाग लेकर धर्मलाभ लिया। आपकी प्रेरणा से महावीर जैन स्वाध्याय मंडल की स्थापना की गयी तथा आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। — **राजधर जैन, सचिव**

सेलू - श्री पंडित धर्मचंदजी शास्त्री एम.ए. अशोकनगर वाले पधारे। प्रतिदिन तीनों समय तत्त्वार्थसूत्र, लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा दशलक्षण धर्म पर आपके आध्यात्मिक प्रवन हुए, जिनसे समाज ने लाभ उठाया। आपके सदुपदेश से लोगों में सोनगढ़ के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। आत्मधर्म के ग्राहक भी बनाये गये। — **ताराचंद काला**

चंदेरी - दशलक्षण पर्व पर श्री पंडित मगनलालजी अशोकनगर वाले पधारे। प्रतिदिन दोनों समय तत्त्वार्थसूत्र तथा दशधर्मों पर आपने सुंदर ढंग से विवेचन किया। एक दिन के लिये अशोकनगर से श्री पंडित नेमीचंदजी पाटनी भी पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचन से समाज पर विशेष प्रभाव पड़ा। आत्मधर्म के ग्राहक भी बनाये गये। — **जीवंधर जैन**

तलोद - श्री पंडित अशोककुमारजी खंडवावाले पधारे। प्रतिदिन तीनों समय समयसार, तत्त्वज्ञानतरंगिणी तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि ग्रंथों पर आपके सरल, सुबोध एवं रोचक प्रवचन हुए। युवकों में नवीन जागृति आयी तथा उन्होंने नियमित शास्त्र स्वाध्याय करने का संकल्प किया। इस अवसर पर श्री ब्रह्मचारी केशवलालजी के दशधर्मों पर आध्यात्मिक प्रवचन भी होते थे। भव्य रथयात्रा का आयोजन भी किया गया। — **कांतिलाल केशवलाल शाह**

शहपुरा - श्री पंडित मोतीलालजी आरोंनवालों के सान्निध्य में पर्यूषण पर्व बहुत ही आनंद तथा उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रतिदिन आपके प्रवचन जैनसिद्धांत प्रवेशिका, तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला तथा दशधर्मों पर चलते थे। पंडितजी के मार्मिक प्रवचनों से समाज में

तत्त्वज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। २६-९-७७ को शोभायात्रा निकाली गयी।

— डॉ० रतनचंद जैन

फतेपुर मोटा - श्री पंडित अमोलकचंदजी अशोकनगरवाले पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। समाज में अपूर्व चेतना उत्पन्न हुई।

— अमृतभाई मेहता

हिम्मतनगर - श्री पंडित कैलाशचंदजी जयपुरवाले पधारे। आपके वैराग्यरस से ओतप्रोत आध्यात्मिक प्रवचनों से मुमुक्षु भाई-बहिनों को आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझने को मिला। प्रतिदिन ६-७ घंटे का समय धर्माराधना में व्यतीत होता था। जाम्बुड़ी से लौटते समय श्री पंडित रमेशचंदजी भी पधारे। उनके भी दो प्रवचनों का लाभ समाज को मिला।

— ताराचंद पोपटलाल कोटडिया

बारां - पर्यूषण पर्व के अवसर पर श्री प्रोफेसर मानमलजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन किया गया। निश्चय-व्यवहार, कर्ता-कर्म तथा दशधर्मों पर आपके गंभीर प्रवचन हुए। आदिनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला हेतु ६०००)रुपये की स्वीकृति प्राप्त हुई। क्षमावाणी पर्व भी सानंद मानाया गया।

सोलापुर - सनावद निवासी श्री पंडित जतीशभाई पधारे। दोनों समय समयसार तथा दशधर्मों पर आपके सरल, स्पष्ट और बड़े ही मार्मिक प्रवचन हुए, जिन्हें सुनकर समाज मंत्रमुग्ध हो जाता था। समाज को बहुत ही धर्मलाभ मिला। **— हीरालाल आ० गाँधी**

करहल - श्री मणीभाई भोलाभाई मुनाईवालों के पधारने से समाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। समयसार कलश, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, दशलक्षण धर्म आदि विषयों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। आपकी अद्‌भुत प्रवचनशैली से समाज में फैली अनेक भ्रांतियाँ दूर हुईं। **— रमेशचंद सिंघई**

शिवपुरी - पर्यूषण पर्व में प्रवचन हेतु श्री पंडित शिखरचंदजी सर्राफ विदिशावाले पधारे। प्रतिदिन तीनों समय आपके प्रवचन चलते थे। श्रोताओं ने आपके प्रवचनों का पूरा-पूरा लाभ लिया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक भी बनाये गये। **— नेमीचंद जैन गोंदवाले**

इंदौर - श्री पंडित जवाहरलालजी विदिशा के शुभागमन से स्थानीय समाज में बहुत

अधिक धर्म प्रभावना हुई। आपके तीनों समय के प्रवचनों से समाज ने पूरा-पूरा लाभ लिया।

— मनोहरलाल काला

फिरोजाबाद - श्री पंडित सुशीलकुमारजी, राघौगढ़ पर्यूषण पर्व पर पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचन उत्तम शैली में होने से समाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। मुनि श्री संभवसागरजी महाराज तथा श्री पंडित ताराचंदजी के भी प्रवचन हुए। **— सूरजभान जैन**

बीना - श्री पंडित सुमनभाई बम्बई (मलाड़) से पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज को अद्‌भुत लाभ मिला। **— बाबूलाल 'मधुर'**

कुरावली - इंदौर निवासी श्री पंडित हीरालालजी गंगवाल का आगमन होने से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर पंडितजी के सारगर्भित प्रवचन हुए।

— केशवचंद जैन

राघौगढ़ - श्री पंडित लालजीरामजी विदिशावाले पधारे। निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान आदि कथनों का पंडितजी ने बड़े ही सुंदर ढंग से विवेचन किया। मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार, जीव-अजीव की भूल, दशधर्म तथा तत्त्वार्थसूत्र पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। २८ सितम्बर को विमानोत्सव चल-समारोह का आयोजन किया गया। **— ताराचंद जैन**

हरदा - श्री पंडित चंपालालजी जैन ललितपुरवालों के द्वारा दशधर्मों की सुंदर व्याख्या की गयी। इस अवसर पर नित्यनियम पूजा, स्वाध्याय तथा चौबीस तीर्थंकर मंडल विधान का आयोजन किया गया। पाठशाला के छात्र-छात्राओं द्वारा अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए तथा 'धर्मचक्र एवं महावीर तथा उनकी परंपराएँ' न्यूजरील दिखायी गयी।

— पंडित धर्मचंद 'फणीस', मंत्री

सिरोंज - श्री पंडित केशरीचंदजी 'धवल' पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से नवचेतना तथा अपूर्व धर्म प्रभावना हुई।

खनियाधाना - पर्वराज पर्यूषण पर्व पर श्री पंडित भानुकुमारजी, जयपुर पधारे। आपकी मृदुल एवं संयत भाषा श्रोताओं का मन मोह लेती थी। पंडितजी की तर्कपूर्ण शैली से वर्तमान में चल रहे विवादों का स्वयमेव समाधान हो गया। आत्मधर्म के ५७ ग्राहक बनाये गये। **— गेंदालाल पुजारी**

रूठयाई – श्री ब्रह्मचारी संतोषकुमारजी विदिशावाले पधारे। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन चलते थे। उनसे सभी जैन-अजैन बंधुओं ने लाभ लिया। आत्मधर्म के ग्राहक बनाये गये। एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना भी हुई।

— नन्नूलाल जैन

बम्बई (घाटकोपर) – श्री पंडित नवलचंदभाई जे० शाह पधारे। आपके शुभागमन से स्थानीय समाज ने अपूर्व धर्मलाभ लिया। घाटकोपर भजनमंडली द्वारा वैराग्यप्रेरक संवाद प्रस्तुत किये गये।

— रसिकलाल ढोलकिया

झाँसी – श्री पंडित चिंतामणिजी, भिंडवाले तथा श्री पंडित अभिनंदनकुमारजी, भोपाल से पधारे। दोनों विद्वानों के ओजस्वी प्रवचनों से समाज में अपूर्व जागृति आयी।

— कैलाशचंद जैन

आवश्यक सूचना – पाठशालाओं के निरीक्षक श्री गोविंदप्रसादजी जैन इन दिनों उदयपुर एवं उसके आस-पास के गाँवों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण कर रहे हैं। अत: निवेदन है कि समाज पंडितजी को उनके कार्य में सहयोग देवे और उनके प्रवचनों का भरपूर लाभ लेवे।

पाठशालाओं को पूर्व सूचना देकर अथवा बिना सूचना के भी वे पाठशालाओं का निरीक्षण कर सकेंगे।

— मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति, जयपुर

राजस्थान में धर्मचक्र

फतेपुर – महावीर निर्वाण महोत्सव के अवसर पर गुजरात से प्रवर्तित महावीर धर्मचक्र का चतुर्थ प्रवर्तन राजस्थान के उदयपुर-भीलवाड़ा संभाग में दिनांक २१ अक्टूबर १९७७ से दिनांक ८ नवम्बर १९७७ तक होने जा रहा है। जिसका उद्घाटन उदयपुर में दिनांक २२ अक्टूबर १९७७ को प्रातः ८ बजे राजस्थान के उद्योगमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन द्वारा होगा। धर्मचक्र के साथ पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित अभयकुमारजी जबलपुर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा व अन्य विद्वान तथा श्रीमान्गण रहेंगे। ज्ञातव्य है कि इसके पूर्व इसके तीन प्रवर्तन और हो चुके हैं। प्रथम महाप्रवर्तन ७५० यात्रियों सहित सारे भारतवर्ष के तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करता हुआ तीन माह में संपन्न हुआ था। द्वितीय प्रवर्तन गुजरात में तथा तृतीय प्रवर्तन उत्तरप्रदेश के झाँसी-ललितपुर जिलों में २०-२० दिन में संपन्न हुये थे। विस्तृत कार्यक्रम निम्नानुसार है:—

फतेपुर से प्रस्थान २१-१०-७७, गोरल २१-१०, उदयपुर २२-१०, कुरावड़ २५-१०, खेटी २७-१०, भीलवाड़ा २८-१०, बीनोता ३०-१०, बोयड़ा ३१-१०, लुड़दा ३१-१०, कूंड १-११, कानोड़ २-११, भींडर ३-११, उदयपुर ३-११ (रात्रि विश्राम), बागीदौरा ४-११, कुशलगढ़ ६-११, दाहौद ६-११ (रात्रि-विश्राम), वापिस फतेपुर ८-११-७७

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल को वीर निर्वाण भारती पुरस्कार

मेरठ – दिनांक २७-९-७७ को आत्मधर्म के संपादक, सुविख्यात विद्वान डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल को वीर निर्वाण भारती पुरस्कार की शृंखला में २५०१) रुपये का २८वाँ पुरस्कार एक विशेष आयोजित समारोह में वीर निर्वाण भारती के प्रधान श्री सुंदरलालजी जैन द्वारा प्रदान किया गया। इस योजना के अंतर्गत इससे पूर्व देश के २७ मूर्धन्य विद्वानों को पुरस्कृत किया जा चुका है। इनमें पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, पंडित भंवरलालजी

न्यायतीर्थ जयपुर, पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ ललितपुर, डॉ० दरबारीलालजी कोठिया वाराणसी, पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री वाराणसी, पंडित नाथूलालजी शास्त्री इंदौर, डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल जयपुर, पंडित बंशीधरजी शास्त्री बीना के नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ० हुकमचंदजी भारिल ने पुरस्कार के लिये आभार प्रगट करते हुए घोषणा की कि वे इस धनराशि का उपयोग स्वयं के लिये न कर, जिस जिनवाणी की सेवा के लिये उन्हें पुरस्कृत किया गया है, उसके प्रचार-प्रसार में ही खर्च करेंगे। आरंभ में वीर निर्वाण भारती के मंत्री श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन ने श्री भारिल्लजी का स्वागत करते हुए कहा कि—'जीवन का आधार तत्त्वज्ञान है और तत्त्वज्ञान को जीवित जैन विद्वानों ने रखा है। यह आज हमारा सौभाग्य है कि इस पुरस्कार से हम डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जैसे विद्वान को पुरस्कृत कर रहे हैं।' ज्ञातव्य है कि वीर निर्वाण भारती पुरस्कार की योजना पूज्य उपाध्याय श्री विद्यानन्दजी मुनि की प्रेरणा से एवं आल इंडिया दि० भगवान महावीर २५००वाँ नि० म० समिति की प्रबंधकारिणी समिति के निर्देशन से मेरठ में प्रारंभ की गई थी।

— राजेन्द्रकुमार जैन

नये प्रकाशन—

बृहद् द्रव्यसंग्रह	मूल्य ८-००	वीतराग-विज्ञान, भाग २ मूल्य ०-५०
श्रावक धर्मप्रकाश	मूल्य ३-५०	(छहढाला प्रवचन)
समयसार प्रवचन, भाग १	मूल्य ६-००	भेद-विज्ञानसार मूल्य २-५०

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	प्रेस में
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-२५
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	प्रेस में
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ?	१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
अपने को पहचानिए	०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
सत्तास्वरूप	१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
सत्य की खोज (भाग १)	२-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४